बडगे जब आठ बजे से कुछ पहले अपनी दूकान पर लौटा तो शंकर ने उसे बतलाया कि नाथूराम उसे ढूंढ़ रहा था; वह दो बार दूकान पर आ चुका था और उस वक़्त भी दफ़्तर में बैठा उसकी राह देख रहा था।

नाथूराम तीसरे पहर दकन क्वीन से बम्बई से चला था और किरकी में उतरकर अपने भाई गोपाल से मिलने गया था। यह सुनकर कि गोपाल को शनिवार सत्रह तारीख़ से छुट्टी मिल रही है, नाथूराम को तसल्ली हुई। गोपाल ने उसे बतलाया कि वह शुक्रवार की शाम को अपने गाँव उकसान जायेगा, जहाँ उसने रिवाल्वर ज़मीन में गाड़ रखा है और वहाँ से सवेरे ही बम्बई की गाड़ी पकड़ लेगा। इस तरह वह तीसरे पहर पंजाब मेल चलने से पहले बम्बई पहुँच जायेगा। तय यह हुआ कि अट्ठारह तारीख़ को जब गाड़ी दिल्ली पहुँचेगी तो स्टेशन पर ही नाथूराम और आप्टे उसे मिल जायेंगे।

दोनों भाइयों ने रात को खाना साथ खाया और फिर नाथूराम अपने कमरे पर सोने के लिए चला गया। शुक्रवार को सुबह का सारा वक़्त नाथूराम ने एक और पिस्तौल या रिवाल्वर जुटाने में बिताया। बड़ी मुश्किल से उसे .22 बोर का बहुत छोटा पिस्तौल मिला जो उसने ख़रीद लिया। वह उससे सन्तुष्ट नहीं था। वह चाहता था कि हो सके तो रिवाल्वर वरना उससे बड़े बोर का पिस्तौल ही मिल जाये!

जब बडगे हिन्दू राष्ट्र के दफ़्तर में आया तो नाथूराम ने उससे पहला सवाल यही किया कि उनके साथ चलने का पक्का इरादा कर लिया है या नहीं और बडगे ने जवाब दिया कि वह बिलकुल तैयार है। बडगे ने बाद में बतलाया कि 'इसके बाद नाथूराम गोडसे ने एक पिस्तौल निकालकर दिया और मुझसे उसके बदले में कोई बड़ा रिवाल्वर ला देने को कहा, और यह भी कहा कि अगर रिवाल्वर न मिल सके तो मैं वही पिस्तौल लेकर बम्बई चला आऊँ।'

ऐसा लगता है कि बडगे ने आखिरी वक़्त पर सौंपा गया यह काम बड़े चुपचाप स्वीकार कर लिया; उसने यह तक नहीं कहा कि उसे भी गाड़ी पकड़नी है। उसने पिस्तौल जेब में रखा और एस० डी० शर्मा नामक एक आदमी से मिलने के लिए चल दिया, जिसके हाथ उसने कुछ ही हफ़्ते पहले एक रिवाल्वर बेचा था। उसे याद था कि वह रिवाल्वर बड़ा था। शर्मा आसानी से रिवाल्वर के बदले पिस्तौल लेने को तैयार हो गया। बडगे ने अपनी गवाही में कहा, 'मैंने उसे पिस्तौल देकर रिवाल्वर वापस ले लिया। शर्मा ने मुझे रिवाल्वर के साथ चार गोलियाँ भी दीं।'

यह रिवाल्वर .32 बोर का था, लेकिन शर्मा ने उसके साथ जो गोलियाँ दी थीं, वे उसके चेंबर में आसानी से आ तो जाती थीं, लेकिन उनकी गोलाई कुछ छोटी थी और वे शायद पिस्तौल की गोलियाँ थीं। लेकिन षड्यन्त्रकारियों को यह उस सुबह मालूम हुआ कि गोलियाँ उस रिवाल्वर की नहीं हैं, जिस दिन उन्होंने उन्हीं गोलियों से गांधीजी की हत्या करने की योजना बनायी थी।

बडगे को पिस्तौल देने के बाद नाथूराम के पास रात को ग्यारह बजे बम्बई की गाड़ी पकड़ने तक काफ़ी वक़्त था कि वह जाकर अपने माँ-बाप से मिल आये। बडगे को शर्मा से सौदा निबटाने में आधी रात हो गयी और उसके बाद बम्बई के लिए एक ही गाड़ी थी जो रात को दो बजे जाती थी। हमेशा की तरह इस गाड़ी में भी तीसरे दर्जे के डिब्बे खचाखच भरे हुए थे, इसलिए उसे और

शंकर को एक ही डिब्बे में जगह नहीं मिल सकी। सारी रात उन्होंने लकड़ी की बेंचों पर बैठे-बैठे काट दी। उन्होंने आपस में तय यह किया था कि शंकर दादर स्टेशन पर उतर जायेगा और हिन्दू महासभा के दफ़्तर में जाकर बडगे की राह देखेगा। सात बजे सुबह ट्रेन विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पहुँची। बडगे ट्रेन से उतरा। आप्टे और नाथूराम प्लेटफ़ार्म पर उसका इन्तज़ार कर रहे थे।

छठा अध्याय

गांधी को—
मरने दो !
हम को—
मकान दो !

—शरणार्थियों का नारा

नाथूराम गोडसे को जासूसी उपन्यास पढ़ने का बेहद शौक़ था और उसका प्रिय लेखक था अर्ल स्टैनली गार्डनर। इसके विपरीत, आप्टे को अगाथा क्रिस्टी के उपन्यास बेहद पसन्द थे। अपराध और जासूसी के इतने उपन्यास पढ़ने के बावजूद असली अपराधियों के तौर-तरीक़ों के बारे में उन्होंने कुछ भी नहीं सीखा था। आखिर तक वे बिलकुल नौसिखिये रहे। उन्होंने जो भी किया, बेहद फूहड़ ढंग से। नाथूराम तो एक डायरी भी रखता था, जिसमें वह एक-एक पाई का हिसाब लिख लेता था कि उसने अपने किस साथी को कितना पैसा दिया। अपने क़दमों के निशान छिपाने की कोशिश करने के बजाय ऐसा लगता है, वे अपने पीछे अपने निशान छोड़ जाने की खासतौर सें कोशिश करते थे।

वे इस बात पर बेहद खुश थे कि बडगे उस सुन्दर-से पिस्तौल के बजाय ज्यादा काम का हथियार ले आया है। अब उन्होंने सुबह का वक़्त अपना काम पूरा करने के लिए कुछ पैसा जुटाने में खर्च करने का फ़ैसला किया। इसके लिए उन्होंने एक टैक्सी ली और बम्बई-भर में घूम-घूमकर उन लोगों से मिलने की क़ोशिश करते रहे, जिनके पते उनके पास थे ताकि हिन्दू धर्म के नाम पर उनसे चन्दा ले सकें। बीच-बीच में वे कुछ और लोगों के पास भी गये। वे एक पिस्तौल उधार माँगने एक बार फिर दीक्षितजी महाराज के पास गये। उन्होंने साफ़ इंकार कर दिया। एक बार शंकर को देखने और उसे हिदायतें देने के लिए वे हिन्दू महासभा के दफ़्तर में भी गये। फिर फ़ोर्ट के इलाक़े में सी ग्रीन होटल (साउथ) से मनोरमा साल्वी को लेकर उसके घर छोड़ने गये। रो-रोकर उसकी आँखें सूज गयी थीं और वह अब भी सिसकियाँ ले रही थी। अगर बडगे की बात पर विश्वास किया जाये तो वे शंकर को लेने के लिए एक बार फिर दादर गये और वहाँ से सावरकर का आशीर्वाद लेने उनके घर गये।

उन दिनों देखी या सुनी रत्ती-रत्ती बात को याद रखने की बडगे की विलक्षण क्षमता तो अपने में सन्देहजनक है ही, और फिर इक़बाली गवाह की हैसियत से तो उसने वह कमाल दिखाया कि लगता था कि वह मँजा हुआ अभिनेता है और उसने अपना पार्ट बहुत अच्छी तरह रट रखा हो। वह कहीं भी न अटका। बडगे के बयान के अनुसार :

> हम लोग टैक्सी से उतरकर सावरकर के घर की ओर चले। शंकर से फाटक के बाहर ही रुकने को कह दिया। आप्टे, नाथूराम और मैं फाटक के अन्दर गये। आप्टे मुझसे नीचे की मंजिल वाले कमरे में ही ठहरने के लिए कहकर नाथूराम के साथ ऊपर चला गया। पाँच-दस मिनट बाद वे नीचे उतरे। उनके पीछे-पीछे तात्याराव (सावरकर) भी आये और उन्होंने उनसे कहा : 'यशस्वी होऊन या !' (सफल होकर लौटना !)[1]

यह बात तो बिलकुल समझ में आती है कि अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए रवाना होने से पहले नाथूराम और आप्टे के मन में सावरकर से मिलने की इच्छा उत्पन्न हुई हो। वे दोनों सावरकर के प्रति वैसी ही श्रद्धा रखते थे, जैसी कांग्रेस के बहुत-से लोगों को गांधीजी के प्रति थी। वे दोनों यह मानते थे कि किसी भी काम को शुरू करने से पहले उनका दर्शन कर लेना बहुत शुभ होगा। लेकिन यह मुलाक़ात हुई भी हो तो उससे यह नतीजा निकाल लेना बिलकुल निराधार होगा कि सावरकर ने ही उन दोनों को गांधीजी की हत्या करने का आदेश दिया था, या जो हत्या इतने फूहड़ और अमानुषिक ढंग से की जाने वाली थी, उसकी उन्होंने स्वीकृति दी थी। टैक्सी-ड्राइवर भी न जाने किस सुविधा की दृष्टि से नज़रों से ओझल रहा और शंकर ने भी, जिसे फाटक के बाहर ही छोड़ दिया गया था, सावरकर को नहीं देखा। गवाह के रूप में बडगे के शानदार कमाल के एक बहुत दिलचस्प पहलू का पता शंकर की गवाही से चलता है। जब शंकर हिरासत में था उस वक़्त भी बडगे उसे लगातार यह सिखाता रहता था कि उसे अदालत में क्या कहना है। उसने यह भी बतलाया कि बडगे खुद अपना बयान बड़ी मेहनत से रटता रहता था।

दोपहर को आप्टे और नाथूराम को हवाई अड्डे जाने के लिए कम्पनी की कोच पकड़ने टाटा एयर-लाइन्स के दफ़्तर पहुँचना था। उस वक़्त तक वे 2,000 रु० से ज़्यादा जमा कर चुके थे और उन्हें अभी दो आदमियों से और मिलना था, जिन्होंने उनको पैसे देने के लिए बुलाया था। उनमें से एक आदमी, जिसने 400 रु० देने का वादा किया था, कुर्ला में रहता था। दूसरा मिल-मालिक था और महालक्ष्मी में रहता था। हालाँकि उसने यह नहीं बतलाया था कि वह कितनी रक़म देगा, लेकिन उन्हें यक़ीन था कि उसकी रक़म काफ़ी बड़ी होगी। उन्होंने

---

1. अगस्त 1974 के अन्तिम सप्ताह में मैं कई बार बडगे से मिला और मैंने ख़ासतौर पर उससे पूछा कि सावरकर के ख़िलाफ़ उसने जो गवाही दी थी, वह कहाँ तक सच थी ? मैंने उस समय जो नोट लिये थे उनसे मैं उसका जवाब उद्धृत करता हूँ। उसने कहा : 'मैंने कभी सावरकर को "यशस्वी होऊन या !" कहते नहीं सुना था। सच तो यह है कि दिल्ली जाते हुए जब हम बम्बई से गुज़रे तो सावरकर उनसे (नाथूराम और आप्टे से) मिले तक नहीं।'

बडगे को 'खर्चे के लिए' 350 रु० दे दिये और तीसरे पहर कुर्ला वाले आदमी से 400 रु० जमा कर लेने को कह दिया और वे सब मिल-मालिक के पास चले गये।

यहाँ उन्हें 1000 रु० और मिल गये, लेकिन इस भाग-दौड़ में एक घंटा और निकल गया था। इसलिए उन्होंने टैक्सी वाले से सीधे सांताक्रुज़ हवाई अड्डे चलने को कहा, जो वहाँ से पन्द्रह मील दूर था। उनका हवाई जहाज़ दो बजे रवाना होने वाला था। रास्ते-भर वे बड़े जोश के साथ बातें करते रहे और आप्टे बार-बार बडगे को यह समझाता रहा कि उसके लिए उसी दिन शाम को फ्रंटियर मेल पकड़ लेना क्यों इतना ज़रूरी है। उसने यह भी वादा किया कि वह अगले दिन शाम को उससे नयी दिल्ली स्टेशन पर मिलेगा। लेकिन अगर किसी वजह से स्टेशन पर मुलाक़ात न हो सके तो बडगे हिन्दू महासभा भवन चला जाये, जहाँ उनमें से एक आदमी उसकी राह देख रहा होगा।

लेकिन जब टैक्सी सांताक्रुज़ हवाई अड्डे पहुँची तो उन्हें पता चला कि उनका हवाई जहाज़ कालीना में पुराने हवाई अड्डे से रवाना होगा, जो वहाँ से एक मील आगे था। आप्टे को अब यह फ़िक्र हुई कि कहीं हवाई जहाज़ छूट न जाये। इसलिए वह टैक्सी वाले को हवा की रफ़्तार से चलने के लिए उकसाता रहा और कालीना पहुँचते ही वह और नाथूराम हवाई जहाज़ पकड़ने के लिए भागे और चलते-चलते चिल्लाकर बडगे से टैक्सी के पैसे चुका देने को कहते गये।

टैक्सी वाले के लिए उन्हें अच्छी तरह याद रखने को इतना ही क्या कम था! ऊपर से बडगे ने 400 रु० वसूल करने के लिए उसी टैक्सी को रोक लिया और उसी से कुर्ला गया और बाद में शंकर को लेकर कुर्ला स्टेशन गया।

अब तीन बज चुके थे। टैक्सी सुबह सात बजे की गयी थी। मीटर में किराया 55 रु० 10 आ० तक पहुँच चुका था। उन दिनों टैक्सी वाले आम तौर पर रोज़ 30 रु० से ज़्यादा नहीं कमा पाते थे। बडगे ने, जो अभी तक साधुओं वाला भड़कीला लिबास पहने हुए था, किराया चुकाया और जब उसने ड्राइवर से उन पैसों की रसीद माँगी तो उसे बहुत ताज्जुब हुआ। ड्राइवर ऐतप्पा कोटियन ने खुशी-खुशी रसीद दे दी।

ऐसा लगता है कि बडगे का पक्का इरादा था कि वह आप्टे के कहने के मुताबिक़ शाम को फ्रंटियर मेल से चला जाये। लेकिन गाड़ी शाम को सात बजे छूटती थी और स्टेशन जाने में अभी बहुत वक़्त बाक़ी था। इसलिए उसने अपने एक पुराने दोस्त नावरे से मिल लेने का फ़ैसला किया, जो दादर में आसरा होटल चलाता था। जगह वहाँ से बहुत दूर भी नहीं थी। बडगे ने बाद में बतलाया कि नावरे ने उसे 'मालिक के मेहमान की हैसियत से' रात होटल में बिताने का निमन्त्रण दिया। बडगे भी चार दिन से दौड़-धूप कर रहा था और उसे एक रात भी ठीक से सोना नसीब नहीं हुआ था। उसने सोचा कि रात-भर आराम से पलंग पर सोने का सुख ले ले। अगर वह बम्बई से अगली शाम को चला तो भी गांधीजी की हत्या की साज़िश में अपनी निर्धारित भूमिका अदा करने के लिए समय से दिल्ली पहुँच जायेगा।

हवाई जहाज़ से रवाना होने से पहले आप्टे और नाथूराम अपने जाने का इतना प्रचार कर चुके थे कि उन्हें नक़ली नामों से टिकट बनवाने की कोई ज़रूरत ही नहीं थी। जिस हवाई जहाज़ से वे जा रहे थे, वह रास्ते में अहमदाबाद में रुकने

वाला था और अहमदाबाद में उतरने वाले यात्रियों में दादा महाराज भी थे, जो वहाँ किसी महत्त्वपूर्ण धार्मिक समारोह में भाग लेने जा रहे थे। दादा महाराज उन दोनों से इतना निराश हो चुके थे कि बम्बई में उन दोनों के मन में उनसे जाकर मिलने का विचार भी नहीं आया था। हवाई जहाज पर एक बार दादा महाराज से उनकी आँखें चार हुईं। दादा महाराज ने उनकी ओर देखकर हाथ हिलाया और उन्होंने भी हाथ हिलाकर उनका जवाब दिया। अहमदाबाद में हवाई अड्डे की इमारत में पहुँचने पर दादा महाराज के भक्तों ने उन्हें फूल-मालाओं से लाद दिया था और वह उनकी भीड़ में घिरे खड़े थे। उन्होंने हाल के पार पुकारकर आप्टे से कहा : 'तुम लोग बातें बड़ी लम्बी-चौड़ी करते हो, लेकिन ऐसा लगता है तुमने किया-धरा कुछ भी नहीं।'

इसके जवाब में आप्टे ने कहा : 'जब हम कुछ करेंगे तो आपको पता चल जायेगा।'

हर क़दम पर कोई-न-कोई सबूत छोड़ते जाने में करकरे और मदनलाल की जोड़ी ने अपने गुरुओं को भी मात कर दिया था।

करकरे अपनी ज़्यादातर कमाई दूसरों पर खर्च करता था; उसने ग़रीबी में इतने दिन काटे थे कि अपने ऊपर पैसा खर्च करने में उसका हाथ रुकता था। गाड़ी छूट जाने के बाद अब वे दोनों ऐसी ट्रेन से जा रहे थे जो बहुत धीमे चलती थी और चौबीस घंटे का सफ़र चालीस घंटे में पूरा करती थी, फिर भी उन्होंने टिकट तीसरे दर्जे का ही लिया था।

उनके डिब्बे में जो बीस-बाईस आदमी थे, उनमें अंगचेकर नाम का भी एक आदमी था। वह पाकिस्तान से आया हुआ शरणार्थी था, जो पहले वहाँ मामूली-सी सरकारी नौकरी करता था और अपनी नौकरी वहाँ से भारत में बदलवा लेने के लिए दिल्ली जा रहा था।

अंगचेकर ने एक यात्री को दूसरे से मराठी में बातें करते सुना, जो उसकी मातृभाषा थी। अंगचेकर उस आदमी से बातें करने लगा और उसने बतलाया कि उसका नाम करकरे है, वह हिन्दू महासभा में काम करता है और महासभा के किसी काम से दिल्ली जा रहा है। अंगचेकर से उसकी मुसीबतों का हाल सुनकर और यह जानकर कि वह दिल्ली में किसी को नहीं जानता और उसका वहाँ कोई ठहरने का ठिकाना भी नहीं है, करकरे ने, जो हमेशा शरणार्थियों की मदद करने के लिए तैयार रहता था, अंगचेकर को अपने साथ हिन्दू महासभा भवन ले जाने का वादा कर लिया, जहाँ पार्टी के कार्यकर्ताओं के ठहरने के लिए कुछ कमरे हमेशा खाली रहते थे। वह और मदनलाल वहीं ठहरने वाले थे।

पेशावर एक्सप्रेस दिल्ली स्टेशन पर सनीचर की दोपहर के वक़्त पहुँचा। करकरे ने एक ताँगा किया और सब उस पर बैठकर हिन्दू महासभा भवन गये, लेकिन वहाँ उस वक़्त कोई कमरा खाली नहीं था। वे लोग बिड़ला मन्दिर की धर्मशाला में गये, लेकिन वहाँ से भी निराश होकर लौट आये। आखिरकार, उन लोगों ने चाँदनी चौक में जाकर वहाँ के एक सबसे सस्ते शरीफ़ होटल में एक कमरा बुक किया, जिसमें तीन पलंग थे। होटल के रजिस्टर में करकरे ने अपना नाम एम० व्यास लिखा, लेकिन अंगचेकर को, जिसने उसके बाद रजिस्टर में अपना नाम भरा, इसमें कोई गड़बड़ी दिखायी नहीं दी; मदनलाल ने अपना नाम ठीक-ठीक लिखा।

करकरे को शायद दिल्ली में बहुत-से काम करने थे, इसलिए वह ज़्यादा वक़्त बाहर ही रहता था, जिसका नतीजा यह हुआ कि मदनलाल और अंगचेकर होटल के कमरे में अकेले रह गये। वे दोनों शरणार्थियों के क़ाफ़िलों में अपने-अपने अनुभवों के बारे में बातें करते रहे और एक-दूसरे को अपने भेद बतलाते रहे। इतवार को मदनलाल ने अंगचेकर से अपने रिश्तेदारों के यहाँ भी चलने को कहा जहाँ वह 'शादी के लिए लड़की पसन्द करने' जा रहा था। इतवार की रात को जब करकरे लौटकर होटल में आया ही नहीं तो दोनों को बहुत ताज्जुब हुआ। सोमवार को सुबह अंगचेकर अपनी नौकरी बदलवाने के लिए दफ़्तर गया। उस वक़्त तक करकरे नहीं लौटा था। लेकिन तीसरे पहर लगभग तीन बजे जब अंगचेकर लौटकर आया तो करकरे कमरे में मौजूद था और वह अपने साथ एक और आदमी को भी ले आया था (यह गोपाल गोडसे था), लेकिन उसका अंगचेकर से परिचय नहीं कराया गया। जब अंगचेकर कमरे में आया उस वक़्त तीनों बातें कर रहे थे, लेकिन उसके आते ही वे चुप हो गये और करकरे ने कुछ रुखाई के साथ अंगचेकर से कहा कि वे तीनों लगभग एक घंटे में 'मदनलाल की शादी के लिए' जालंधर जा रहे हैं, इसलिए उसे भी कमरा ख़ाली करना पड़ेगा। दिल्ली में अंगचेकर का काम पूरा हो चुका था और वह शाम की गाड़ी से बम्बई वापस जा रहा था, इसलिए उसे यों भी कमरे की कोई ज़रूरत नहीं थी। अंगचेकर करकरे का बहुत आभारी था कि उसने उसे अपने साथ ठहराया। चलते वक़्त उसने करकरे से उसका पता पूछा। इसके जवाब में करकरे ने अंगचेकर से बहुत अजीब बात कही : 'मेरा पता जानने की तुम्हें कोई ज़रूरत नहीं है।'

अगर करकरे अब यह कोशिश कर रहा था कि वह अपने पीछे कोई सबूत न छोड़े तो इसके लिए बहुत देर हो चुकी थी। जिस तरह आप्टे ने पूरा बन्दोबस्त कर लिया था कि टैक्सी-ड्राइवर कोटियन उसे पहचान ले, उसी तरह करकरे ने भी पूरा प्रवन्ध कर लिया था कि अंगचेकर उसे और मदनलाल को कभी भूल न सके। अपनी इन लापरवाहियों की उन दोनों को बहुत बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी। नाथूराम गोडसे ने, जिसने वास्तव में गांधीजी की हत्या की थी, अपना अपराध स्वीकार कर लिया था और मदनलाल रँगे हाथों पकड़ा गया था; लेकिन अगर आप्टे और करकरे ने अपने पीछे हर क़दम पर इतने बहुत-से सबूत न छोड़े होते और बार-बार वे बिलकुल अजनबी लोगों को भी यह न बतलाते चलते कि वे कौन हैं, और इस तरह तमाशबीनों को भी ठोस गवाह न बना देते, तो उनके ख़िलाफ़ इतने पक्के सबूत वाला मुक़दमा कभी नहीं बन सकता था।

इस बार भी गांधीजी का आमरण अनशन पाँच दिन से ज़्यादा नहीं चला। इन्हीं पाँच दिनों के अन्दर सारे देश की भावनाओं में बुनियादी तबदीली आ गयी। जिस तरह कोई शराबी सवेरे से पहले नशा टूटने पर शराब पीना छोड़ देने का संकल्प करता है, उसी तरह सम्पूर्ण राष्ट्र की आत्मा को एक झटका-सा लगा और एक क्षण के लिए सभी लोग अपने मन की गहराइयों में उतरकर झाँकने पर मजबूर हो गये।

वाइसराय लॉर्ड माउंटबैटेन के प्रेस-सेक्रेटरी एलन कैंपबेल-जॉन्सन ने, जिन्हें इन घटनाओं को बहुत पास से देखने का अवसर मिला था, लिखा है : 'गांधीजी के अनशन के प्रभाव को समझने के लिए ज़रूरी है कि उनके अनशन को बहुत निकट से देखा जाये।' इस अनशन की वजह से अब अख़बारों के पहले पन्ने पर

न कश्मीर के युद्ध की खबरें छपती थीं और न साम्प्रदायिक दंगों और मारकाट की। नेहरू और उनके साथी दौड़े-दौड़े गांधीजी को यह समझाने के लिए गये कि वह अपना फ़ैसला बदल दें। इसके जवाब में उन्होंने एक दूसरी शर्त भी जोड़ दी कि या तो भारत पाकिस्तान को उसके 55 करोड़ रुपये दे दे या फिर उन्हें मरने दे; उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं था कि पाकिस्तान के साथ भारत का युद्ध चल रहा है। गांधीजी न केवल दिल्ली के लोगों के हृदय-परिवर्तन की माँग कर रहे थे, बल्कि उन्होंने भारत-सरकार को भी चुनौती दी थी।

कांग्रेस के नेता सारी दिल्ली में दौड़-दौड़कर नागरिकों के विभिन्न समुदायों से सलाह-मशविरा कर रहे थे और रातों की नींद छोड़कर वे कोई ऐसा रास्ता निकालने की कोशिश कर रहे थे, जिसे स्वीकार करने पर सभी समुदायों को मजबूर किया जा सके। वे जानते थे, यह कहकर कि दिल्ली में एक साथ शान्ति स्थापित हो गयी है, गांधीजी की आँखों में धूल झोंकना आसान काम नहीं है। एक तो यह कि गुस्से से भरे हुए शरणार्थियों के जुलूस बिड़ला हाउस के पास आकर बदला लेने के नारे लगाते रहते थे और गांधीजी को ये नारे सुनायी देते थे। इसके अलावा, गांधीजी की अपनी निजी सूचना-व्यवस्था थी। उनके पास रोज़ हर तरह के लोगों के सैकड़ों पत्र आते थे, जिनमें वे अपना दुखड़ा उसी तरह रोते थे जैसे अपने किसी सगे-सम्बन्धी से अपनी व्यथा कह रहे हों और बहुत-से लोग तो अपनी व्यथा दूर कराने खुद उनके पास आ जाते थे।

गांधीजी ने बारह तारीख को अपनी प्रार्थना-सभा में कहा : 'अपने सभी मित्रों से मेरा अनुरोध है, वे न तो भाग-भागकर बिड़ला हाउस आयें, न मुझे समझाने की कोशिश करें कि मैं अपना अनशन तोड़ दूं और न मेरे लिए चिन्तित हों। मैं भगवान के हाथों में हूँ।'

यह ऐसी रोक थी जिसे गांधीजी भी अच्छी तरह से जानते रहे होंगे कि लोग मानेंगे नहीं। लोगों के झुंड-के-झुंड बिड़ला हाउस आते और गांधीजी के आश्रम-वासियों के घेरे के चारों ओर बैठ जाते। बिड़ला हाउस के लॉन पर मेला जैसा लगा रहता। दुनिया के बड़े-से-बड़े अखबारों के संवाददाता चारों ओर इस तरह मँडलाते रहते जैसे लाश पर गिद्ध उड़ते रहते हैं। वे पेड़ों के नीचे कोई सुविधाजनक जगह देखकर अपने-अपने टाइपराइटर लेकर बैठ जाते और बड़े-बड़े लोगों का आना-जाना लिखते रहते और अपनी सारी बुद्धि लगाकर घटनाओं की गूढ़ व्याख्या करने की कोशिश करते रहते। इनमें से एक पत्रकार की हथेली में कोई फुंसी हो गयी तो उसने उसका सम्बन्ध भी गांधीजी के अनशन के सिलसिले में अपनी दौड़-धूप के साथ जोड़ दिया।

अब राजधानी का केन्द्र न गवर्नमेंट हाउस था जहाँ माउंटबैटेन रहते थे, न 13 यार्क रोड जहाँ नेहरू रहते थे, बल्कि बिड़ला हाउस था। इस परिवर्तन को स्वीकार करते हुए नेहरू ने 'नक़द बची हुई रक़म में पाकिस्तान के हिस्से की समस्या पर नये सिरे से विचार करने के लिए' अपने मन्त्रिमंडल की मीटिंग बिड़ला हाउस के लॉन पर की।

इस मीटिंग में सरकार ने गांधीजी के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उन्होंने भलेमानसों की तरह पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये दे देने का वचन दिया। अब सिर्फ़ दूसरी शर्त रह गयी थी। लेकिन वह कोई ऐसी आसान बात नहीं थी, जिसकी जिम्मेदारी गांधीजी के बिस्तर के चारों ओर बैठे हुए दर्जन-भर लोग उनके कहने-भर से अपने ऊपर ले सकते हों! ठोस प्रमाण देकर साबित करना था कि

मुसलमानों का क़त्ल बन्द हो गया है, क़त्ल किये जाने के खतरे का सामना करने वाले खुद आकर यह कहते कि अब वे कोई खतरा महसूस नहीं करते, परस्पर विरोधी सम्प्रदाय पहले की तरह मिल-जुलकर एक-दूसरे के त्योहार मनाने लगते।

लेकिन अब यह भी सम्भव लगने लगा था। धारा निश्चित रूप से दूसरी दिशा में मुड़ने लगी थी। गांधीजी के प्राइवेट सेक्रेटरी प्यारेलाल के शब्दों में : 'लोगों में पूरी तरह उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत हो गयी और वे सच्चे हृदय-परिवर्तन के लिए भरपूर मुहिम का आयोजन करने में जुट गये।'

अगर अनशन की वजह से एक ओर लहर का उतार शुरू हो रहा था, तो दूसरी ओर चढ़ती हुई भी दिखायी दे रही थी। स्थानीय नेता दिल्ली के नागरिकों को तो समझा-बुझा सकते थे, लेकिन पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों को, जिनकी संख्या अब यहाँ के नागरिकों के बराबर ही हो गयी थी, स्थानीय नेताओं से न तो कोई लगाव था और न उनके प्रति कोई श्रद्धा। इन शरणार्थियों ने मुसलमानों के हाथों बहुत मुसीबतें झेली थीं और वे बदला लेने के लिए बेचैन हो रहे थे। वे इससे बेहद नाराज़ थे कि गांधीजी ने मुसलमानों को अपने किये का फल भोगने से बचाने के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा दी थी। और, उनकी नज़रों में पाकिस्तान को इतनी बड़ी रक़म का दिया जाना राष्ट्र के साथ विश्वासघात से कम नहीं था, जिसके खिलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए वे जुलूस बनाकर बिड़ला हाउस जाते। हमेशा सन्तरी उन्हें फाटक पर ही रोक देते। वे चुपचाप धरना देकर सड़क के किनारे बैठ जाते और सन्तरियों से गाली-गलौज करते रहते। बीच-बीच में वे नारे लगाते रहते : 'मरता है तो मरने दो!' और 'खून का बदला खून से लेंगे!' बिड़ला हाउस की खिड़कियों पर पत्थर भी फेंके जाते। जब उनके प्रदर्शन क़ाबू से बाहर होने लगते तो पुलिस वाले लाठियाँ बरसाकर उन्हें तितर-बितर कर देते। लेकिन कुछ ही मिनट बाद वे फिर वहाँ जमा हो जाते।

जब किसी मन्त्री की मोटर अन्दर जाती या फाटक से बाहर निकलती तो इन लोगों के नारों की आवाज़ इतनी तेज़ हो जाती कि कान के परदे फटने लगते। इस पर दूसरे मन्त्री तो अपनी मोटरों में गद्दी पर इस तरह धँसे हुए बैठे रहते जैसे उन्हें यह शोर सुनायी दे ही न रहा हो, लेकिन नेहरू अपनी मोटर रुकवाकर कूदकर बाहर निकल आते।

उन्होंने चुनौती देते हुए पूछा, 'कौन कह रहा था कि "गांधी को मरने दो!" अगर हिम्मत है तो मेरे सामने कहे। गांधी से पहले मुझे मारना होगा!'

नेहरू की फटकार सुनकर शोर बन्द हो जाता, लेकिन बस उतनी ही देर के लिए जितनी देर वह सामने रहते। अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे सोने की कोशिश करते हुए गांधीजी को भी अल्बुक़र्क़ रोड की तरफ़ से आता हुआ इन नारों का शोर सुनायी देता होगा और उनकी आँख खुल जाती होगी : 'मरता है तो मरने दो! खून का बदला खून से लेंगे!' कभी-कभी उनके मन में भी यह संशय पैदा होता होगा कि इस बार उन्हें सफलता मिलेगी या नहीं।

उन्हें सफलता मिली। 15 जनवरी की रात को, उनका अनशन शुरू होने के तीन दिन के अन्दर ही, एक सरकारी विज्ञप्ति में ऐलान किया गया कि 'शक-शुबहे और झगड़े का एक कारण दूर करने के लिए' सरकार ने बाक़ी बची हुई रक़म में

पाकिस्तान का हिस्सा रोक लेने के बारे में अपना फ़ैसला बदल दिया है। विज्ञप्ति में यह भी कहा गया था कि यह नया फ़ैसला 'शांति और सद्भावना के लिए... गांधीजी की ओर से किये जाने वाले अहिंसापूर्ण और उदात्त प्रयासों में सरकार का यथाशक्ति योगदान है।'

गांधीजी ने अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे ही सरकार को इसके लिए बधाई दी कि 'उसने इतनी तत्परता से अपना फ़ैसला बदल दिया।'

इसी बीच कुछ सख्ती करके और कुछ समझा-बुझाकर शरणार्थियों के जुलूसों का आना रोक दिया गया था। और नहीं तो कम-से-कम यह हुआ कि उन्हें बिड़ला हाउस से एक मील दूर ही रोक दिया जाता। सोलह तारीख के बाद गांधीजी की नींद में उन नारों से, जिनमें उनके मरने की कामना की जाती थी, कोई विघ्न नहीं पड़ा।

गांधीजी द्वारा अपना अनशन तोड़ने के लिए रखी सारी शर्तों को पूरा करने के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने, जो कुछ ही समय बाद भारत के पहले राष्ट्रपति बने, एक सात-सूत्री फ़ार्मूला तैयार किया। यह फ़ार्मूला एक शपथ के रूप में था, जिसमें हिन्दुओं और सिखों को यह वचन देना था कि वे मुसलमानों को सतायेंगे नहीं और सभी राजनीतिक पार्टियों, शरणार्थियों के संगठनों, धार्मिक संस्थाओं और शहर की मुसलिम बस्तियों की नागरिक समितियों के नेताओं को इसका अनुमोदन करना था। एक ही कमरे में जमा इन नेताओं को एक-दूसरे की गरदन पर सवार होने से रोकना सचमुच बहुत बड़ी समस्या रही होगी, लेकिन जिस तरह जंगल के जानवर सर पर मँडराते हुए खतरे से सहम जाते हैं, उसी तरह ये लोग भी आने वाली विपदा के डर से—गांधीजी के मर जाने के खतरे से—सहमकर बिलकुल शान्त हो गये थे। लेकिन जिस समय इस शपथ पर हस्ताक्षर किये जा रहे होंगे उस समय भी बहुत-से लोगों के मन में इसके बारे में सन्देह रहा होगा। सत्रह तारीख को रात-भर मीटिंग करके राजेन्द्र बाबू उन सभी के हस्ताक्षर करा लेने में सफल हो गये, जिनको वह चाहते थे। सुबह हस्ताक्षर करने वाले सभी लोग विजयोल्लास के साथ यह दस्तावेज़ लेकर गांधीजी के पास गये।

दिल्ली के लोगों ने शपथ ली थी कि वे 'मुसलमानों के जान-माल और उनके मज़हब पर किसी तरह की आँच नहीं आने देंगे, और (वादा किया था कि) दिल्ली में अब तक जिस तरह की घटनाएँ होती रही थीं, अब फिर कभी नहीं होंगी।'

गांधीजी ने भावनाओं से रुँधे हुए स्वर में उनसे कहना शुरू किया ही था कि उनके इस फ़ैसले से उनका मन खुश हुआ है, पर वह कुछ कह न सके। थोड़ी देर बाद 'प्रार्थना' हुई जिसमें जापानी, मुसलिम और पारसी धर्म-ग्रन्थों के अंशों का पाठ हुआ और उसके बाद यह श्लोक पढ़ा गया :

असतो मा सद्गमय
तमसोर्मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमयेति।

प्रार्थना समाप्त होने के बाद गांधीजी ने अपने मुसलिम दोस्त अबुलकलाम आज़ाद के हाथों से फलों का रस पिया।

एयरलाइन की कोच ने आप्टे और नाथूराम को नयी दिल्ली के बीचोंबीच लाकर छोड़ दिया और 17 जनवरी की रात को साढ़े आठ बजे कनाट प्लेस के मैरीना होटल के 40 नम्बर के कमरे में उन्होंने अपना डेरा जमा लिया। यह होटल भी बिलकुल वैसा ही है जैसे बम्बई के दोनों सी ग्रीन होटल—पश्चिमी ढंग का मध्यमवर्गीय होटल, जिसमें सिर्फ़ हिन्दुस्तानी ही ठहरते थे। होटल के रजिस्टर में उन्होंने अपने नाम एम० देशपांडे और एस० देशपांडे लिखे। यह कभी स्पष्ट नहीं हो सका कि उनमें से कौन एम० देशपांडे था और कौन एस० देशपांडे। इससे कोई फ़र्क़ भी नहीं पड़ा। दोनों खाना खाकर हिन्दू महासभा भवन गये, जहाँ करकरे उनकी राह देख रहा था। उससे थोड़ी देर बातें करके वे अपने होटल में लौट आये। अगले दिन सुबह करकरे उनके साथ नाश्ता करने आया और उसके बाद तीनों ताँगे पर बैठकर बिड़ला हाउस देखने गये, जहाँ गांधीजी ठहरे हुए थे।

दिल्ली के बिड़ला हाउस में उन दिनों बिड़ला-परिवार के प्रधान सेठ घनश्याम दास बिड़ला रहते थे। आज बिड़ला हाउस एक राष्ट्रीय स्मारक बना दिया गया है और जिस सड़क पर कोठी है, उसका नाम अल्बुक़र्क़ रोड से बदलकर गांधीजी की हत्या की तारीख के आधार पर 'तीस जनवरी मार्ग' रख दिया गया है।

पाँच बजे शाम को बिड़ला हाउस में गांधीजी की प्रार्थना-सभा में जाने के लिए किसी पर कोई रोक नहीं थी। बाक़ी दिन-भर फाटक पर खड़े हुए सन्तरी किसी को आसानी से अन्दर नहीं जाने देते थे। लेकिन बाग़ीचे और उस जगह का नक़्शा समझने के लिए जहाँ प्रार्थना सभा होती थी, फाटक से होकर जाना ज़रूरी नहीं था। कोठी के दोनों तरफ़ और पीछे छोटी गलियाँ थीं, और कोठी के पीछे नौकरों के लिए बने हुए क्वार्टरों और मोटरें रखने की गेराजों में जाने के लिए एक अलग दरवाज़ा था। बाग़ीचे का ज़्यादातर हिस्सा तो इन गलियों से ही दिखायी देता था और बड़ी सड़क से भी गांधीजी सुबह के वक़्त अकसर नीची-सी पक्की दीवार के पीछे कंधे पर तौलिया डाले धूप में बेंत की कुर्सी पर बैठे कुछ पढ़ते हुए या अपने सेक्रेटरी को कुछ लिखाते हुए दिखायी दे जाते थे।[1]

यह याद रखना होगा कि तय हुआ था कि अगर किसी वजह से स्टेशन पर एक-दूसरे से मुलाक़ात न हो सके तो वे लोग हिन्दू महासभा भवन में मिलेंगे, जहाँ करकरे और मदनलाल ठहरनेवाले थे। नाथूराम पार्टी का प्रमुख और बहुत प्रभावशाली कार्यकर्ता था और दिल्ली में महासभा के कई सम्मेलनों में भाग ले चुका था। वह पार्टी के सेक्रेटरी आशुतोष लाहिड़ी को बहुत अच्छी तरह जानता था। उसने करकरे को उनके नाम एक परिचय-पत्र दे दिया, जिसकी वजह से अट्ठारह तारीख को तीसरे पहर से करकरे के नाम 3 नम्बर का कमरा बुक कर दिया गया था।

उस दिन तीसरे पहर अंगचेकर को साथ लेकर जब मदनलाल चाँदनी चौक के इलाक़े में अपनी शादी के लिए लड़कियाँ देख रहा था, आप्टे, नाथूराम और करकरे गांधीजी की प्रार्थना-सभा में गये हुए थे। गांधीजी खुद नहीं आये थे, क्योंकि वह अभी तक बिस्तर से उठे नहीं थे, लेकिन उन्होंने लाउड स्पीकर पर पढ़कर सुनाये जाने के लिए एक सन्देशा भिजवा दिया था। उसी दिन गांधीजी ने

---

1. 30 जनवरी को सुबह अपने दफ़्तर जाते हुए मैंने गांधीजी को इसी हालत में देखा था।

—म० मु०

अपना अनशन तोड़ने का फ़ैसला किया था और उनकी जीवनी के लेखक डी० जी० तेंदुलकर के अनुसार, 'वह उनके लिए और सभी के लिए बहुत खुशी का दिन था।' उस दिन प्रार्थना-सभा में हमेशा से कुछ ज़्यादा ही भीड़ थी और हर आदमी इस तरह टहल रहा था जैसे स्कूली बच्चों को अचानक छुट्टी दे दी गयी हो। तीनों षड्यन्त्रकारी पूरे बाग़ीचे में घूम-घूमकर अपनी योजना को अन्तिम व्यावहारिक रूप देते रहे। अब अनशन समाप्त हो चुका था, इसलिए उन्हें पूरा विश्वास था कि एक-दो दिन में ही गांधीजी बाहर निकलने लगेंगे और प्रार्थना-सभा में स्वयं आने लगेंगे।

हर काम खूबी के साथ होते जाने से बेहद सन्तुष्ट होकर वे नयी दिल्ली स्टेशन गये, जहाँ बम्बई की दोनों तेज़ गाड़ियाँ, पंजाब मेल और फ्रंटियर मेल, घंटे-भर के अन्तर से आनेवाली थीं। फ्रंटियर मेल से बडगे और शंकर आने वाले थे और पंजाब मेल से गोपाल। दोनों ट्रेनें ठीक समय से आ गयीं; लेकिन कई बार पूरे प्लेटफ़ार्म का चक्कर लगाने के बाद भी उन्हें न तो बडगे और शंकर ही कहीं दिखायी दिये और न गोपाल ही। बडगे और शंकर तो बम्बई में एक दिन के लिए ठहर गये थे, इसलिए वे उस गाड़ी से आये नहीं, लेकिन गोपाल पंजाब मेल से ही आया था और नयी दिल्ली पहुँच गया था। हुआ यह था कि वह ट्रेन रुकने से पहले ही नीचे कूद पड़ा था और एक जगह खड़े होकर इन्तज़ार करने के बजाय वह उस भीड़ में उन लोगों को ढूंढ़ता हुआ प्लेटफ़ार्म पर इधर-उधर चक्कर काट रहा था। वे लोग इस नतीजे पर पहुँचे कि गोपाल की गाड़ी भी छूट गयी होगी। वे दोनों मैरीना होटल लौट गये; पहली बार वे निराशा अनुभव कर रहे थे और कुछ घबरा भी गये थे, क्योंकि मदनलाल बारूद वग़ैरह तो अपने साथ ले आया था, लेकिन उनके दोनों रिवाल्वरों में से एक भी नहीं पहुँचा था। आप्टे आमतौर पर सिर्फ़ एक पेग शराब पीता था, लेकिन उस दिन वह स्कॉच ह्विस्की के दो डबल पेग पी गया।

उस रात करकरे शरीफ़ होटल वापस नहीं गया, बल्कि हिन्दू महासभा भवन में उसे जो कमरा दिया गया था, उसी में सो गया। वह जानता था कि अगर किसी वजह से स्टेशन पर गोपाल पर, और बडगे तथा शंकर पर उनकी नज़र न पड़ी तो वे हिन्दू महासभा भवन ज़रूर ही आयेंगे और वह नहीं चाहता था कि जब वे वहाँ पहुँचें तो वह वहाँ न हो। लेकिन न बडगे और शंकर आये, और न गोपाल ही आया। बम्बई की अगली गाड़ी के आने तक गोपाल प्लेटफ़ार्म पर इन्तज़ार करता रहा और उस गाड़ी के चले जाने के बाद वह वहीं बेंच पर सिकुड़ कर सो गया कि शायद उसका भाई या कोई और रात को उसे ढूंढ़ता हुआ वहाँ आये।

उन्नीस तारीख को बहुत सवेरे आप्टे और नाथूराम टैक्सी लेकर हिन्दू महासभा भवन गये और यह जानकर उन्हें बड़ी परेशानी होने लगी कि उनके तीनों साथियों में से अभी तक कोई भी नहीं आया था।

लेकिन वे कुछ कर भी नहीं सकते थे। नाथूराम और आप्टे टहलते हुए बराबर की बिल्डिंग में सेक्रेटरी के दफ़्तर में गये और कुछ देर तक वहाँ बैठे। आशुतोष लाहिड़ी से बातें करते रहे, कम-से-कम उनकी बातें सुनते रहे। वह शान्ति समिति पर अपना ग़ुस्सा उतार रहे थे, जिसने कहा था कि उनकी पार्टी ने भी उस सात-सूत्री शपथ पर हस्ताक्षर कर दिये हैं, जिसकी वजह से गांधीजी

अपना अनशन तोड़ने को तैयार हुए थे। लाहिड़ी का कहना था कि महासभा ने इस तरह के किसी बयान पर हस्ताक्षर नहीं किये थे; और न ही उसने अपने किसी सदस्य को हस्ताक्षर करने का अधिकार ही दिया था। उन्होंने अपनी स्थिति साफ़ करते हुए अखबारों के लिए एक बयान भी तैयार किया। उनसे मिलने जो कोई आता उसे वह इस बयान की एक कापी पहले ही से दे देते थे।

यह किसी को भी ठीक से मालूम नहीं है कि नाथूराम और आप्टे लाहिड़ी से किस वक़्त मिलने गये थे, या वे उनके पास कितनी देर बैठे। यह सवाल बाद में इसलिए महत्त्वपूर्ण बन गया कि उस सुबह किसी ने लाहिड़ी के दफ़्तर से टेलीफ़ोन से बम्बई की ट्रंक कॉल बुक की थी। यह हो नहीं सकता कि लाहिड़ी को या उनके दफ़्तर के किसी ज़िम्मेदार आदमी को न मालूम रहा हो कि वह कॉल किसने बुक की थी।

यह कॉल अर्जेंट थी और सुबह नौ बजकर बीस मिनट पर बुक की गयी थी। बम्बई का जो टेलीफ़ोन नम्बर मिलाया गया था, वह सावरकर के घर का नम्बर था। टेलीफ़ोन करने वाला जिन लोगों से बात करना चाहता था, उनके नाम बताये गये थे—सावरकर के सेक्रेटरी जी० दामले या सावरकर का अंगरक्षक अप्पा कसार।

बाद में मामले की जाँच-पड़ताल करने वालों ने इस ट्रंक कॉल को लेकर तिल का ताड़ बना दिया। उनका कहनां था कि यह टेलीफ़ोन नाथूराम ने सावरकर से यह मालूम करने के लिए किया था कि गोपाल बम्बई से होकर गुज़रा या नहीं। यह बात उनकी इस सामान्य धारणा से पूरी तरह मेल खाती थी कि दिल्ली के लिए रवाना होने से पहले सभी षड्यन्त्रकारी सावरकर के पास उनके आदेश या कम-से-कम उनका आशीर्वाद लेने ज़रूर जाते थे। गोपाल ने इस लेखक से बहुत दृढ़ता के साथ कहा कि उसे यह भी नहीं मालूम था कि सावरकर का घर है कहाँ। दूसरी ओर, इसके दरजनों कारण हो सकते हैं कि दिल्ली में हिन्दू महासभा के सेक्रेटरी खुद सावरकर से कोई बात करना चाहते हों, या कम-से-कम उनके किसी कर्मचारी के ज़रिये उनके पास कोई सन्देशा पहुँचाना चाहते हों। महासभा में सावरकर का वही स्थान था, जो काँग्रेस में गांधीजी का, क्योंकि निर्वाचित अध्यक्ष कोई भी हो, पार्टी में सबसे ऊँचा स्थान उन्हीं का रहता था। और यह बात भी नहीं भूलना चाहिए कि लाहिड़ी उसी वक़्त एक ऐसा ऐलान करने वाले थे, जिस पर आम जनता और सरकार दोनों ही की तरफ़ से विरोध का एक तूफ़ान उठ सकता था।

लेकिन गांधीजी की हत्या के बाद अचानक अफ़सरों और राजनीतिज्ञों को, ज़रा-सा भी शक होने पर उसे इस मामले में फँसा देने का जो भूत सवार हो गया था, उसे देखते हुए कोई भी यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था कि सावरकर के घर टेलीफ़ोन किसने किया था। इसलिए यह रहस्य कभी खुल न सका कि वह टेलीफ़ोन किसने किया। पुलिस का यह दावा कभी साबित नहीं हो सका कि वह टेलीफ़ोन नाथूराम ने किया। लेकिन अगर उसने किया भी हो तो इससे पुलिस को कोई फ़ायदा नहीं होने वाला था; क्योंकि वह नम्बर मिला ही नहीं। साढ़े ग्यारह बजे तक इन्तज़ार करने के बाद जिसने भी वह ट्रंक कॉल बुक की थी, उसने उसे कैंसिल करवा दिया। इस कॉल का एक ही इस्तेमाल हुआ कि मामले की जाँच करने वालों को गांधीजी की हत्या की साज़िश के साथ सावरकर का नाम जोड़ देने के लिए दूर से दिखने वाला एक सुराग़ मिल गया।

लेकिन करकरे का बयान है कि उस समय से कम-से-कम एक घंटा पहले, जब वे सब उसके कमरे में बैठे यह सोच रहे थे कि अब क्या करना चाहिए, उन्हें नीचे एक ताँगा आकर रुकने की आहट मिली और वे यह देखने के लिए बाहर निकले कि उस ताँगे पर कौन आया है! उसमें एक ही आदमी बैठा था—गोपाल।

वे उसे जल्दी से घसीटकर कमरे में ले आये और उससे पहला सवाल यह पूछा कि वह अपना रिवाल्वर लाया है या नहीं। रिवाल्वर वह लाया था? इसके बाद आप्टे, नाथूराम और करकरे उसे नहा-धोकर आराम करने के लिए कमरे में छोड़कर एक बार फिर बिड़ला हाउस के बग़ीचे और लॉन का मुआइना करने के लिए चले गये।

तीसरे पहर करकरे लौटकर हिन्दू महासभा भवन आया, वहाँ से उसने गोपाल को साथ लिया और शरीफ़ होटल में अपने कमरे पर गया। यहाँ मदनलाल और गोपाल की पहली बार मुलाक़ात हुई। तीनों होटल के लोहे के पलंगों पर बैठकर अंगचेकर के वापस आने का इन्तज़ार करते रहे कि उसके आते ही उसे बतला दें कि वे लोग मदनलाल की शादी के लिए लड़की देखने जालंधर जा रहे हैं। अंगचेकर से पीछा छुड़ाकर तीनों हिन्दू महासभा भवन में करकरे के कमरे में वापस चले गये। बडगे और शंकर अभी तक नहीं आये थे।

शाम को मदनलाल और गोपाल उसी कमरे में रहे और करकरे वहाँ से आप्टे और नाथूराम से मिलने मैरीना होटल चला गया। वहाँ से वे तीनों नयी दिल्ली स्टेशन पर उसी ट्रेन, फ्रंटियर मेल को देखने गये, जिससे बडगे और शंकर को कल ही आ जाना चाहिए था। एक बार फिर वे अपना-सा मुँह लेकर लौट आये। यह सोचकर कि शायद गोपाल की तरह बडगे और शंकर पर भी उनकी नजर न पड़ी हो, वे हिन्दू महासभा भवन गये और वहाँ उन्हें पता चला कि दोनों सचमुच ही आ गये थे। वे दोनों उन्हें स्टेशन पर इसलिए नहीं दिखायी दिये थे कि वे फ्रंटियर मेल से नहीं बल्कि पंजाब मेल से आये थे।

उन दोनों के लिए अलग कोई कमरा नहीं था, और इसमें परेशान होने की कोई ज़रूरत भी नहीं समझी गयी। आप्टे ने उनसे हॉल में सो जाने को कहा और वे रात काटने के लिए वहीं लेट गये।

दादर का आसरा होटल कोई ताजमहल नहीं है, और बम्बई में उससे सस्ती रहने की जगह मुश्किल से ही ढूँढ़े मिलेगी, लेकिन उसके रेस्तराँ को अपने शाकाहारी भोजन और हिन्दुस्तानी मिठाइयों पर बड़ा गर्व है। मालिक के मेहमान होने के नाते बडगे और शंकर को अलग एक कमरा दे दिया गया था। वह सुबह बड़ी देर तक सोते रहे, फिर डटकर नाश्ता करने के बाद दादर के बाज़ार में घूमते फिरे। बडगे ने शंकर के लिए एक टोपी खरीदी और दिल्ली की सर्दी से बचने के लिए अपने वास्ते कम्बल खरीद लिये। दोपहर के लगभग वे फिर आसरा होटल गये, जहाँ इतवार होने की वजह से ख़ासतौर पर बहुत अच्छा भोजन बना था। उन्होंने ट्रेन पर अपने साथ ले जाने के लिए नवरे से एक टोकरी लड्डू भी ले लिये।

तीसरे पहर बहुत जल्दी वे लोग लोकल ट्रेन से विक्टोरिया टर्मिनस चले गये और वहाँ घंटों प्लेटफ़ार्म पर पंजाब मेल की राह देखते रहे, जो फ्रंटियर मेल से पहले छूटती थी, जिससे बडगे ने कल ही चल देने का वादा किया था। इस बार

बडगे ने अपने और शंकर के लिए ड्योढ़े दर्जे के टिकट लिये। सोमवार 19 जनवरी की शाम को वे दिल्ली पहुँच गये। गांधीजी की हत्या के लिए जो समय तय किया गया था उसमें अब चौबीस घंटे भी नहीं रह गये थे, और बाक़ी सब लोग राजधानी में पहले ही से जमा हो चुके थे।

प्लेटफ़ार्म पर उन्हें लेने के लिए कोई आदमी दिखायी नहीं दिया। बडगे को इसकी उम्मीद भी नहीं थी। हमेशा की तरह अपनी सूझ-बूझ से काम लेते हुए वह किराये का ताँगा लेकर सीधे हिन्दू महासभा भवन पहुँच गया। हड्डियों तक चुभने वाली सर्दी थी और लगातार हल्की-हल्की बारिश हो रही थी। उन्होंने अभी रात का खाना भी नहीं खाया था, लेकिन सौभाग्य से लड्डुओं की टोकरी अभी तक आधी हुई थी। बडगे और शंकर ने हिन्दू महासभा भवन के हॉल में क़दम रखते ही 'मदनलाल को एक आदमी के साथ' देखा, जिसके बारे में बाद में पता चला कि वह नाथूराम का भाई गोपाल था।

बडगे ने .32 का जो रिवाल्वर शर्मा से हथिया लिया था, वह अभी तक उसके, बल्कि कहना चाहिए कि शंकर के क़ब्ज़े में था। फ़ौजी रिवाल्वर गोपाल ले आया था और बारूद वग़ैरह मदनलाल के बिस्तरबन्द में थे। दोनों मुखिया, आप्टे और नाथूराम, अपने साथ कोई खतरनाक चीज़ नहीं लाये थे।

जिस दिल्ली में वे आये थे, वह उस समय एक ऐसा शहर था मानो तूफ़ान के बाद शान्त हो गया हो, और उसके बारे में कहा जाता था कि उसने अपने सारे पाप धो डाले हैं। उन्नीस तारीख की सुबह के अखबारों में छपा था कि यहाँ मुसलमान नागरिक बिना किसी खतरे के आज़ादी से घूम-फिर रहे हैं। कुछ मुसलमान तो जुलूस बनाकर भी निकले और हिन्दुओं और सिखों ने फल और मिठाई के तोहफ़ों से उनका स्वागत किया।

यह सब इतने नाटकीय ढंग से हो रहा था कि उसकी सचाई के बारे में शक होता था कि शासक पार्टी दिखावे के लिए करा रही है। गांधीजी की जान बचाने के लिए उठी जन-उत्साह की लहर का ज़ोर भी अब कुछ ठंडा पड़ चला था और कुछ लोग शान्ति की शपथ पर दुबारा ग़ौर करने के बाद इस नतीजे पर पहुँचते जा रहे थे कि वह उतनी सर्वसम्मत नहीं है, जितना कि कहा जाता था। हिन्दू महासभा के चरमपंथी तत्त्व जानना चाहते थे कि उनके स्थानीय प्रवक्ताओं ने कांग्रेस के दबाव में आकर शान्ति की शपथ पर हस्ताक्षर क्यों कर दिये, जबकि पार्टी की घोषित नीति इसके विपरीत थी। पार्टी के सेक्रेटरी आशुतोष लाहिड़ी ने इस आरोप का बड़ी दृढ़ता से खंडन किया। उन्होंने ऐलान किया कि सात-सूत्री शपथ पर न उन्होंने हस्ताक्षर किये थे और न उनकी पार्टी के किसी दूसरे ज़िम्मेदार आदमी ने।

महासभा के स्थानीय नेताओं ने भले ही शपथ पर हस्ताक्षर न किये हों, लेकिन यह नहीं था कि उस समय जो वातावरण व्याप्त था, उससे वे प्रभावित न हुए हों। गांधीजी के कमरे में, जहाँ शपथ पर हस्ताक्षर किये गये थे, मौजूद रहने के लिए राज़ी होकर उन्होंने यही भ्रम पैदा कर दिया था कि उन्होंने भी हस्ताक्षर किये हैं। कांग्रेस के नेताओं को इतना ही चाहिए था। संकट टल गया। गांधीजी की जान बच गयी। अब वे सारा ज़ोर इस बात का ठोस प्रबन्ध करने की मुहिम में लगा रहे थे कि गांधीजी जहाँ भी जायें वहाँ हिन्दू, मुसलमान और सिख आपस में एक-दूसरे को फल और मिठाइयाँ देते हुए दिखायी दें।

महासभा के नेताओं को इसका आभास था कि सबकी नज़रों में उन्हें बेवकूफ़ बनाया गया है, और लाहिड़ी एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर यह भ्रम दूर कर देना चाहते थे कि उनकी पार्टी ने शान्ति की शपथ पर हस्ताक्षर किये हैं।

इसी बीच सरकार ने हिन्दू और सिख नेताओं को लोगों को दुबारा उकसाने से रोकने के लिए सभी साम्प्रदायिक जुलूसों और मीटिंगों पर पाबन्दी लगा दी थी और लाहिड़ी को अखबारों में बयान देकर सन्तोष कर लेना पड़ा। इस बयान में दूसरे सभी लोगों की तरह गांधीजी के अनशन तोड़ देने पर सन्तोष प्रकट करते हुए उन्होंने बताया था कि उनकी पार्टी के प्रतिनिधियों ने सात-सूत्री शपथ पर कभी हस्ताक्षर नहीं किये और उनकी पार्टी उस शपथ का पालन करने के लिए कभी राज़ी नहीं होगी। उन्होंने यह आरोप लगाया कि अनशन से हिन्दुओं की स्थिति उनके अपने देश में और पाकिस्तान में भी कमज़ोर हुई थी, और अन्त में 'पूरा ज़ोर देकर' कहा कि 'हम बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस आत्मघाती नीति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।'

यह बयान उन्नीस तारीख को जारी किया गया था; नाथूराम और आप्टे, जिन्हें लाहिड़ी ने खुद इसकी एक कापी दी थी, इसे पढ़कर बेहद खुश हुए। उन्हें यह बात बहुत अच्छी लगी कि उनकी पार्टी अभी तक अपने प्रण पर अटल थी और गांधीजी की जान बचाने के नारे के सामने झुकने से उसने इंकार कर दिया था। अब कुछ कर दिखाने की घड़ी निकट आती जा रही थी, इसलिए अपने संकल्प को मज़बूत करने के लिए वे चारों ओर इसी तरह के सहारे खोज रहे थे।

शाम के अखबारों में एक और अच्छी-सी खबर थी। अनशन के अन्तिम दो दिनों में गांधीजी के स्वास्थ्य की वजह से बड़ी चिन्ता पैदा हो गयी थी, लेकिन अब उनकी हालत तेज़ी से सुधरती जा रही थी और इस बात की पूरी आशा की जाती थी कि अगले दिन वह अपनी प्रार्थना-सभा में आयेंगे और एकत्रित लोगों के सामने कुछ शब्द कहेंगे।

इस तरह एक असली मुश्किल दूर हो गयी। वे गांधीजी की हत्या करने आये थे। अगर गांधीजी अपने बिस्तर से ही लगे रहते और अपने कमरे से बाहर न निकलते तो उनकी योजना आसानी से पूरी नहीं हो सकती थी। गांधीजी के कुछ चुने हुए शिष्य हर समय उन्हें घेरे रहते थे और उनके नियमित मिलने वालों को ही कमरे में जाने दिया जाता था। यह जानकर उन लोगों को बहुत खुशी हुई कि अब गांधीजी बाहर निकलने वाले थे। खुली जगह में उन्हें मारना कहीं आसान था।

सातवाँ अध्याय

> जिन भयानक घटनाओं की वजह से पाकिस्तान बना उनकी सबसे ज्यादा ज़िम्मेदारी गांधीजी पर थी।
>
> —नाथूराम गोडसे

उन्नीस तारीख़ की रात को मदनलाल और गोपाल हिन्दू महासभा भवन के कमरे में सोये और बडगे और शंकर बाहर ड्योढ़ी में। करकरे ने रात आप्टे और नाथूराम के साथ मैरीना होटल के कमरे में बितायी।

रात-भर हलकी-हलकी बारिश होती रही, लेकिन सुबह होते-होते थम गयी और साढ़े सात बजे आसमान बिलकुल साफ़ हो गया। तय यह हुआ था कि वे सभी अगली सुबह हिन्दू महासभा भवन में मिलेंगे। लेकिन सुबह साढ़े आठ बजे सिर्फ़ आप्टे और करकरे ही वहाँ पहुँचे। उन्होंने बतलाया कि नाथूराम को आधा-सीसी का बहुत सख्त दर्द हो रहा है, जो उसे अकसर हो जाया करता था, लेकिन उसने वादा किया है कि थोड़ी देर बाद आ जायेगा। आप्टे ने बडगे और शंकर से कहा कि उसके साथ बिड़ला हाउस चलें ताकि वह मौक़े पर ले जाकर उन्हें बता दे कि क्या करना है। मदनलाल और गोपाल, जिन्हें हत्या की इस साजिश में उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ सौंपी गयी थीं, पहले कभी बिड़ला हाउस नहीं गये थे। वे इस बार भी आप्टे के साथ नहीं जा सके, क्योंकि वे नहाने के लिए पानी गरम होने का इन्तज़ार कर रहे थे। करकरे पहले ही से उस जगह से परिचित हो चुका था जहाँ यह कांड होने वाला था, इसलिए उसने सोचा कि एक बार फिर उसी सबक़ को दोहराना समय नष्ट करना होगा, इसलिए वह महासभा भवन में ही रह गया।

आप्टे ने टैक्सी ली और उस पर बडगे और शंकर को बिड़ला हाउस ले गया। बड़े फाटक के सामने कुछ देर तक मँडराते रहने के बाद आप्टे उन्हें कोठी के पीछे नौकरों के क्वार्टरों की तरफ़ ले गया और वे पीछे के फाटक से कोठी के अहाते में घुसे। बिड़ला हाउस के बाग़ का एक हिस्सा धँसाव में था और कोठी से लेकर छोटे-से कुंज तक फैले लम्बे-चौड़े लॉन का एक हिस्सा ऊँचा और एक नीचा था। आप्टे ने बडगे को वह जगह दिखायी, जहाँ गांधीजी प्रार्थना-सभा के समय बैठते थे; वह जगह लॉन के ऊँचे वाले हिस्से में थी। आप्टे ने उन लोगों को

समझाया कि पीछे बनी हुई नौकरों की कोठरियों में से एक कोठरी की पीछे वाली खिड़की वहाँ से 'चार-पाँच क़दम से भी कम' दूरी पर है।

उस 3 नम्बर की कोठरी में बिड़ला-परिवार का एक मोटर-ड्राइवर छोटूराम रहता था और उसमें खिड़की क्या थी, दरअसल दीवार की ईंटों के बीच में थोड़ी-थोड़ी जगह छोड़कर हवा आने के लिए एक रोशनदान जैसा बना दिया गया था। इस रोशनदान का बहुत अच्छा विवरण दिल्ली पुलिस के डी० एस० पी० सरदार जसवन्त सिंह ने अपनी गवाही में दिया जिन्होंने खुद 'इस जाली की पैमाइश की थी।'

> यह जाली यकसाँ नहीं बनी हुई है...उसके सारे झरोखे एक शक्ल या एक-बराबर के नहीं हैं।...उनमें से कोई झरोखा चौकोर नहीं है।...आठ झरोखे बड़े हैं—6 इंच लम्बे और 3 इंच चौड़े; इस जाली में कुल मिलाकर 26 झरोखे हैं।

बडगे के बयान के अनुसार, आप्टे टहलता हुआ इस जाली के पास गया और उसने 'एक डोरी से झरोखों को नापा।'

आप्टे ने खुद अपनी सारी ज़िन्दगी में कभी हथगोला नहीं फेंका था। सच तो यह है कि वह अब भी यही विश्वास करता था कि हथगोले के खटके को जगह पर रोके रहने वाली पिन को बाहर निकालने का एक ही तरीक़ा था कि उसे दाँत से खींच लिया जाये। इसमें भी शक है कि उसने कभी रिवाल्वर चलाया था। फिर भी इस वक़्त उसने यह फ़ैसला कर दिया कि इस जाली के एक झरोखे में से 'रिवाल्वर भी चलाया जा सकता है और हथगोला भी फेंका जा सकता है।'

इसके बाद वह उन दोनों को अपने साथ नौकरों के क्वार्टरों के पीछे ले गया और उन्हें वह झरोखों वाली कोठरी दिखायी, जिसे वे दूसरी तरफ़ से देख चुके थे। उसने बडगे को समझाया कि बस करना यह होगा कि फ़ोटो खींचने के बहाने कोठरी में घुस जाये, एक झरोखे में से गांधीजी पर गोली चलाये और बाद में उसी तरह झरोखे में से एक हथगोला भीड़ पर फेंक दे।

उस कोठरी को अन्दर से न आप्टे ने देखा न बडगे ने, लेकिन दोनों ही सन्तुष्ट थे कि वहाँ से उनका काम बन जायेगा। और जहाँ तक शंकर का सवाल था तो उसे अभी तक नहीं मालूम हो सका था कि उसे बिड़ला हाउस के बाग़ में क्यों टहलाया जा रहा है या बाद में उसे क्या करना है, क्योंकि आप्टे सारी बातें बडगे को ही बहुत धीमी आवाज़ में समझा रहा था और वह भी मराठी में, जिसका एक शब्द भी शंकर की समझ में नहीं आता था। आप्टे को पूरा यक़ीन हो गया था कि उसने अपने आदमियों को एक बहुत ही साहसपूर्ण छापे का सारा नक़्शा अच्छी तरह समझा दिया है, इसलिए वह अपने गिरोह को बाक़ी बातें सिखाने के लिए उन दोनों को लेकर फिर महासभा भवन गया।

ये लोग वहाँ पहुँचे तो ग्यारह बज चुके थे। कमरे में सिर्फ़ गोपाल था। वह नहा-धोकर तैयार बैठा था। करकरे और मदनलाल खाना खाने गये हुए थे। हालाँकि तीन आदमी मौजूद नहीं थे, फिर भी आप्टे ने अपनी टोली को एक और अभ्यास करा देने का फ़ैसला किया। उसने अपने दूसरे साथियों से कहा, 'हम लोग पीछे जंगल में जाकर अपने दोनों रिवाल्वरों को चलाकर तो देख लें।'

गोली चलाने के इस अभ्यास में जो कुछ हुआ वह नौटंकी से भी ज़्यादा

हास्यास्पद था, हालाँकि उसमें भाग लेने वाले पात्र जान लड़ाकर अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाने की कोशिश कर रहे थे। बडगे ने बाद में इस घटना का विवरण देते हुए बताया, 'जंगल में पहुँचकर आप्टे ने गोपाल से अपना रिवाल्वर निकालने को कहा। उसने रिवाल्वर निकाला, लेकिन जब घोड़ा दबाया तो पता चला कि उसका चेम्बर बाहर ही नहीं निकलता।'

गोपाल अपने साथ जो .38 का वेवले स्कॉट रिवाल्वर लाया था, वह लगभग चार साल तक ज़मीन में गड़ा रहा था; उसमें मिट्टी भर गयी थी और ज़ंग लग गयी थी।

आप्टे ने बडगे से अपना रिवाल्वर निकालने को कहा। जब तक जोखिम उठाने के लिए शंकर मौजूद था, बडगे अपने पास कोई ख़तरे वाली चीज़ नहीं रखता था। उसने शंकर से रिवाल्वर निकालने को कहा। आप्टे ने चारों गोलियाँ, जो शर्मा ने बडगे को दी थीं, रिवाल्वर में भरीं और रिवाल्वर शंकर को देते हुए उससे गोली चलाने को कहा। शंकर ने कहा कि वह गोली नहीं चला पायेगा, लेकिन आप्टे ने उससे कहा, 'बस घोड़ा दबा दो।' इसके बाद 'शंकर ने गोली चलायी। गोली पेड़ तक पहुँचने से पहले बीच ही में गिर गयी।'

बडगे का रिवाल्वर .32 बोर का था और बिलकुल ठीक हालत में था। गड़बड़ी यह थी कि शर्मा ने जो गोलियाँ दी थीं वे या तो छोटी थीं या उनमें कोई ख़राबी थी।

आप्टे ने गालियाँ देकर छोटे रिवाल्वर को 'बिलकुल निकम्मा हथियार' घोषित कर दिया। अब सारा दारोमदार इस बात पर था कि गोपाल के रिवाल्वर की ठीक समय पर मरम्मत हो जाये। गोपाल को याद आया कि महा-सभा भवन के उसके कमरे में नारियल के तेल की एक शीशी और एक छोटा चाक़ू रखा है। उसने शंकर को भेजा कि जाकर ये दोनों चीज़ें ले आये और साथ ही बैठने के लिए एक कम्बल भी लाने को कहा ताकि साफ़ किये हुए पुर्ज़ों में फिर से मिट्टी न लगने पाये। शंकर भागकर ये सब चीज़ें ले आया। एक पेड़ के नीचे कम्बल बिछाकर गोपाल अपने रिवाल्वर के पुर्ज़ों की ज़ंग साफ़ करने लगा और बाक़ी लोग बहुत चिन्तित होकर उसे देखते रहे।

थोड़ी ही देर में एक क्षण के लिए वहाँ बौखलाहट फैल गयी। उन्हें कुछ लोगों के उधर आने की आवाज़ सुनायी दी और उन्होंने दोनों रिवाल्वर अभी कम्बल के नीचे छिपाये ही थे कि तीन आदमी वरदी पहने हुए उधर आते दिखायी दिये। जंगल में अपनी मौजूदगी के लिए उन्होंने कमाल का बहाना बनाया। बडगे को कम्बल पर लिटा दिया गया, जैसे उसे बहुत दर्द हो रहा हो, और शंकर शीशी में से तेल निकालकर उसके गट्टे पर मलने लगा। जब वे लोग पास आये तो इन्होंने समझ लिया कि जंगल के चौकीदार गश्त पर निकले होंगे। उनमें से एक सिपाही ने उनसे पूछा कि यहाँ क्या कर रहे हो ? गोपाल ने, जिसने फ़ौज में नौकरी के दिनों में पंजाबी बोलना अच्छी तरह सीख लिया था, उन्हें बतलाया कि ऐसे ही सैर करने निकले थे और वहाँ बैठकर आराम कर रहे थे, क्योंकि उनके एक साथी के गट्टे में मोच आ गयी थी। सिपाही उनकी सफ़ाई से सन्तुष्ट होकर आगे बढ़ गये, लेकिन आप्टे बहुत घबरा गया था। उसने कहा कि खुले मैदान में बैठकर रिवाल्वर मरम्मत करने की कोशिश बेकार है; यह काम कमरे में जाकर करना ही ठीक रहेगा। वे चारों फिर महासभा भवन के कमरे में चले गये। तब तक करकरे और मदनलाल भी खाना खाकर वापस आ गये थे।

दोपहर हो चुकी थी और अब मुश्किल से पाँच घंटे बाक़ी बचे थे। आप्टे ने सब लोगों को और साथ ले जाने वाले सामान को दो टैक्सियों में भरा और मैरीना होटल गया। वहाँ पहुँचकर उसने बडगे और शंकर से नीचे जाकर रेस्तराँ में खाना खा आने को कहा और इसी बीच उसने यह हिसाब लगाने की कोशिश की कि वे अपने साथ जो फ़लीते लाये थे उनके जलने में कितना वक़्त लगता है। करकरे के बयान के अनुसार,

> बहुत तेज़ चमक हुई और साँप के फुफकारने जैसी आवाज़ आयी। जब हम लोगों ने अपनी-अपनी आँखें खोलीं तो सारे कमरे में घना काला धुआँ भरा हुआ था। खाँसते-खाँसते हम लोगों का बुरा हाल था। हमने एक पलंग पर से गद्दा उठाया और फ़लीते के सुलगते हुए टुकड़ों पर डालकर उन्हें बुझा दिया। होटल का एक नौकर यह मालूम करने कि क्या हो गया था, भागा-भागा दरवाज़े तक आया, लेकिन आप्टे ने उसे यह कहकर टाल दिया कि सिगरेट जलाते वक़्त एक गद्दे में आग लग गयी थी।

इतमीनान से जी भरकर खाने के बाद जब बडगे और शंकर ऊपर कमरे में लौटे तो उन्होंने देखा कि सबकी बाँछें खिली हुई हैं। गोपाल ने अपना रिवाल्वर ठीक कर लिया था। कम-से-कम उसका हर पुर्ज़ा अब काम करने लगा था। उससे गोली चलेगी कि नहीं, यह आज़माने का कोई तरीक़ा नहीं था, क्योंकि अब निशानेबाज़ी का अभ्यास करने के लिए समय नहीं रह गया था।

उन्होंने कमरा अन्दर से बन्द कर लिया और आधे घंटे तक बड़ी सावधानी से हथगोलों के खटके वग़ैरह ठीक करते रहे और बारूद की सिल्लियों में फ़लीते वग़ैरह लगाते रहे। इसके बाद वे आपस में बड़ी देर तक सलाह-मशविरा करते रहे।

अब उनके अस्त्रागार में था : गोपाल का .38 का रिवाल्वर, जिसके बारे में उन्हें उम्मीद थी कि वह ठीक काम करेगा; बडगे का .32 का रिवाल्वर, जिसके बारे में वे जानते थे कि वह बिलकुल बेकार है; पाँच 36 नम्बर के हथगोले, जिनमें लगे हुए फ़लीते जलने के लिए सात सेकंड लेते थे; और दो एक-एक पौंड की बारूद की सिल्लियाँ, जिनमें लगे हुए फ़लीते जलने के लिए डेढ़ मिनट लेते थे। वे लोग, और कम-से-कम मदनलाल तो ज़रूर, विस्फोटकों का इस्तेमाल पहले कर चुके थे, लेकिन उनमें से किसी ने भी न तो कभी रिवाल्वर चलाया था और न 36 नम्बर का हथगोला फेंका था। इसलिए उन्हें तनिक भी अन्दाज़ा नहीं था कि इन हथियारों की ख़ूबियाँ और खामियाँ क्या हैं। मिसाल के लिए, बडगे (बदली हुई योजना के अनुसार) पूरी तरह से आशा करता था कि वह तीस फ़ुट की दूरी से गांधीजी को अपने रिवाल्वर का निशाना बना लेगा, जबकि इतनी दूरी से बहुत मँजा हुआ आदमी ही पूरे भरोसे के साथ किसी को गोली मार सकता है और जहाँ तक हथगोलों का सवाल था, उनका मंसूबा यह था कि वे जितना हो सके गांधीजी के पास जाकर चारों ओर से भीड़ में अंधाधुन्ध गोले फेंक देंगे। उन्हें यह पता ही नहीं था कि इस तरह सैकड़ों लोगों की निर्मम हत्या करने के अलावा वे अपनी जान भी जोखिम में डाल देंगे।

नाथूराम ने सिर-दर्द के बाद काँपते हुए पहले तो सबको जोश दिलाया कि यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि उनका उद्देश्य ठीक है, उन्हें अपनी सफलता

पर पूरा भरोसा होना चाहिए, क्योंकि 'यह उनके लिए आखिरी मौक़ा होगा।' इसके बाद आप्टे ने मोर्चा संभाला और बतलाया कि सारा काम किस तरह करना होगा। उसने उन्हें बतलाया कि सबसे पहले तो 'वहाँ गड़बड़ी और हलचल पैदा कर दी जाये' और उसके बाद रिवाल्वर चलाकर और हथगोले फेंककर गांधी को और जो भी उनके पास हो, उसे ख़त्म कर दिया जाये। गड़बड़ी पैदा करने के लिए बारूद की दो सिल्लियों का विस्फोट किया जायेगा। एक विस्फोट तो मदनलाल करेगा। दूसरा कौन करेगा ?

सब पत्थर की मूरत बने बैठे थे। असल बात यह थी कि किसी ने न तो कभी विस्फोट किया था और न ही उन्हें यह मालूम था कि कैसे किया जाये ? बडगे गोला-बारूद और पिस्तौल-बन्दूक़ें बेचने का कारोबार करता था, लेकिन बाद में उसने स्वीकार किया, 'मैंने हथगोले फेंकना, बारूद की सिल्लियों का विस्फोट करना, रिवाल्वर या पिस्तौल चलाना कभी सीखा ही नहीं था।...मैंने न तो कभी हथगोला फेंका और न कभी बारूद का धमाका किया।'

बडगे ने आप्टे के सामने सुझाव रखा, 'एक ही धमाके से क्यों न काम चला लिया जाये ? दो धमाकों की जरूरत ही क्या है ?'

इसलिए फ़ैसला हुआ कि मदनलाल बारूद की एक ही सिल्ली का धमाका करेगा; वह डेढ़ मिनट में जलने वाले फ़लीते में आग लगाकर गांधीजी को चारों ओर से घेरे हुए दूसरे लोगों में जा मिलेगा और उन पर हथगोला फेंकने के लिए तैयार हो जायेगा।

धमाका सुनते ही बडगे गोपाल के रिवाल्वर से उस झरोखे में से गांधीजी पर गोली चलायेगा, जो उसे सुबह दिखाया गया था और शंकर, जो उस वक़्त तक खिसकता-खिसकता बिलकुल गांधीजी के पास पहुँच चुका होगा, बडगे वाले रिवाल्वर में बची हुई बाक़ी तीन गोलियाँ ठीक सामने से उन पर चलायेगा। अपने रिवाल्वर की सारी गोलियाँ चला चुकने के बाद बडगे एक झरोखे में हथगोला रखकर उसे अपने रिवाल्वर की नली से आगे ठेल देगा। रिवाल्वर की गोलियाँ चलते ही दूसरे लोग अपने-अपने हथगोले गांधीजी की दिशा में फेंकेंगे। इस काम के लिए साथ लाये पाँच हथगोले उन्होंने एक-एक कर बडगे, शंकर, करकरे, मदनलाल और गोपाल को दे दिये। आप्टे ने न अपने पास कोई हथियार रखा था, न नाथूराम को दिया था। उनका काम था 'इशारे करके' इस पूरी कार्रवाई का संचालन करना।

'कोई सवाल ?'

किसी ने कोई सवाल नहीं पूछा। योजना में किसी तरह की ख़राबी नहीं थी। कोई गड़बड़ी हो ही नहीं सकती थी। बारूद की सिल्ली का धमाका होगा और भगदड़ मच जायेगी; बडगे गांधीजी के बैठने की जगह के ठीक पीछे वाली कोठरी में घुस जायेगा; गोपाल के रिवाल्वर से वह गोली चलायेगा; दूसरे छोटे रिवाल्वर की गोलियों में, जिसने सुबह इतनी बुरी तरह धोखा दिया था, अचानक किसी चमत्कार से रफ़्तार पैदा हो जायेगी। इसके बाद सभी लोग चारों ओर से हथगोले फेंकेंगे, जैसे बच्चे तालाब में कंकर फेंकते हैं और सब-कुछ हो जाने के बाद वे ख़ून-ख़राबे के उस घटना-स्थल से चुपचाप टहलते हुए चले आयेंगे, न उन्हें कोई चोट लगेगी और न कोई उन्हें देख पायेगा। वे बड़े इतमीनान से अपने-अपने कमरों में वापस चले जायेंगे और एक-दो दिन तक दुबके रहने के बाद ट्रेन या हवाई जहाज़ से अपने-अपने ठिकानों के लिए रवाना हो जायेंगे। और, थोड़े दिनों में सारा राष्ट्र

उनका सम्मान करेगा, वे ऐसे वीर माने जायेंगे, जिनके प्रति देश आभारी होगा कि वे अपनी जान पर खेल गये; उन्हें सच्चा देश-भक्त माना जायेगा, जिन्होंने मातृभूमि को उस दुष्ट आत्मा से मुक्ति दिला दी, जिसने देश की सारी मान-मर्यादा मिट्टी में मिला दी थी।

आप्टे को यह मालूम था कि शंकर को कुछ भी बताया जाये, वह एक शब्द नहीं समझ पाता; उसे यह भी नहीं मालूम था कि गांधीजी की सूरत कैसी है। लेकिन इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं थी। शंकर तो बडगे का दुमछल्ला था और उसे समझाना बडगे का काम था। शंकर को समझाने के लिए बडगे ने कहा कि 'जिस आदमी पर मैं अपना हथगोला फेंकूं उसी पर तुम भी फेंकना; जिस आदमी पर मैं गोली चलाऊँ उसी पर तुम भी चलाना—एक बूढ़े का सफ़ाया करना है, जिसका नाम गांधी है।'

किसी और बात पर सोच-विचार करना बाक़ी नहीं रह गया था। अगर दूसरों ने यह महसूस भी किया हो कि दोनों नेताओं ने अपने लिए कोई सक्रिय भूमिका नहीं रखी थी या यह कि वे अपने साथ कोई हथियार भी नहीं रखने वाले थे, तो इसमें उन्हें कोई अजीब बात नहीं मालूम हुई।

अपना काम पूरा करने के लिए रवाना होने से पहले उनके पास पूरे एक घंटे का समय था, यह एक घंटा उन्होंने अपनी ऐसी योजना, जिसमें कोई खराबी नज़र नहीं आती थी, की नोक-पलक ठीक करने में ख़र्च किया।

उनकी यह कोशिश भी स्वाँग बनकर रह गयी। ऐसा लगता था कि जैसे-जैसे वह निर्णायक क्षण निकट आता जा रहा था, न सिर्फ़ उनके मन से सारा तनाव दूर होता जा रहा था बल्कि उनकी बुद्धि भी भ्रष्ट होती जा रही थी।

आप्टे ने आदेश जारी किया कि इस अवसर के लिए वे सभी अपने नाम बदल लेंगे। नाथूराम का नाम 'देशपांडे' रख दिया गया; आप्टे 'कर्मारकर' बन गया; करकरे का नाम बदलकर 'ब्यास' (या 'व्यास') रख दिया गया; बडगे का नया नाम था 'बंदोपंत'; और शंकर का 'तुकाराम'। किसी को भी अब यह याद नहीं है कि गोपाल और मदनलाल के नाम क्या रखे गये थे। किसी ने यह सोचा भी नहीं कि उस वक़्त जो गड़बड़ी मचेगी, उसमें उन सातों के लिए एक-दूसरे के नाम याद रखना असम्भव हो जायेगा।

इसके बाद करकरे ने सुझाव दिया कि सब लोग अपना भेस भी बदल लें, और सभी सहमत हो गये कि यह बहुत अच्छा विचार था। उन्होंने आपस में एक-दूसरे से कपड़े बदल लिये, और हर आदमी ने कोशिश यह की कि वह कोई ऐसा लिबास पहने जो वह आमतौर पर नहीं पहनता था। बडगे ने अपने गेरुए कपड़े उतारकर घुटनों तक लम्बा सफ़ेद कुर्ता और सफ़ेद धोती पहन ली और कंधे पर एक अँगोछा रख लिया। नाथूराम ने पुलिस वालों की तरह ख़ाक़ी नेकर और खाकी कमीज़ पहन ली, आप्टे ने गहरे रंग का सूट पहनकर गले में स्कार्फ़ बाँध लिया; मदनलाल ने आप्टे की एयरफ़ोर्स की वर्दी का नीला कोट पहन लिया और करकरे ने 'नक़ली मूँछें लगाकर अपनी भौंहों को गहरा काला रंग लिया और माथे पर लाल तिलक लगा लिया।

गाँव की स्वाँग-मंडली की तरह भेस बनाकर वे लोग महात्मा की हत्या करने के लिए चल पड़े।

उन पर अपने ही विचारों का जादू चढ़ा हुआ था। वे गांधी की हत्या कर देंगे (उन दर्जनों लोगों की कोई चर्चा नहीं थी जो उनके आस-पास होंगे और

मारे जायेंगे) और चुपचाप ऐसे निकल जायेंगे जैसे कुछ हुआ ही न हो। उन्हें पूरा यक़ीन था कि उन पर किसी को शक भी नहीं होगा। उन्होंने कोई गड़बड़ी हो जाने पर दिल्ली से फ़ौरन निकल भागने की कोई तैयारी नहीं की। उसी दिन सवेरे आप्टे और नाथूराम दोनों ने इस भरोसे के साथ होटल के धोबी को कपड़े धोने के लिए दिये थे कि बाईस तारीख़ को ले लेंगे।

सुरजीतसिंह एक अनपढ़ सिख नौजवान था, जो पाकिस्तान से भागकर आया था। वह किसी तरह एक मोटर भी अपने साथ लेता आया था। अब दिल्ली में वह अपनी मोटर को प्राइवेट टैक्सी की तरह चलाकर रोज़ी कमाता था। उसे बड़ा गर्व था कि उसकी मोटर जैसा मूंगिया रंग किसी और मोटर का नहीं है और शायद वह दिल्ली की अकेली टैक्सी थी, जिसकी छत पर कैरियर लगा था। 20 जनवरी को तीसरे पहर सुरजीतसिंह रीगल सिनेमा के पास सवारी की राह देख रहा था कि इतने में चार आदमी उधर आते दिखायी दिये। चूंकि टैक्सी में मीटर नहीं था, इसलिए उन्होंने बिड़ला हाउस तक जाने, वहाँ आधे घंटे इन्तज़ार करने और वापस आने का किराया ठहरा लिया।

उसकी चार सवारियाँ थीं—आप्टे, गोपाल, बडगे और शंकर। आप्टे ने सुरजीत से अपनी मोटर बिड़ला हाउस के पीछे ले चलने को कहा और वे सब नौकरों के क्वार्टरों के पास उतर गये। सुरजीत ने उन्हें पीछे के फाटक से बाग़ीचे में जाते देखा। कुछ मिनट तक वह अपनी मोटर के पास खड़ा रहा, फिर उसने सोचा कि वह भी जाकर गांधीजी की प्रार्थना-सभा में हो आये; इस-लिए वह भी उसी फाटक से अन्दर चला गया।

नाथूराम, मदनलाल और करकरे इन लोगों से पहले ही बिड़ला हाउस पहुँच गये थे। उन तीनों ने आकर इन लोगों को बतलाया कि सब-कुछ बिलकुल योजना के अनुसार चल रहा है। मदनलाल ने विस्फोटक निर्धारित जगह पर रख दिया था और आप्टे का इशारा पाते ही वह उसके फ़लीते में आग लगा देगा। करकरे ने उस कोठरी में रहने वाले नौकर से, जिसमें झरोखेवाली जाली थी, यह तय कर लिया था कि वह बडगे को फ़ोटो लेने के लिए अन्दर जाने दे।

नाथूराम और आप्टे बडगे को लेकर कोठरी की तरफ़ गये। उसके पास पहुँचते ही बडगे ने देखा कि 'दरवाज़े के पास चारपाई पर एक काना आदमी बैठा है।'

यह बहुत बड़ा अपशकुन था। काम के शुरू में काना आदमी दिखायी दे जाये तो काम कभी पूरा नहीं हो सकता। बडगे ने मुड़कर आप्टे से कहा कि वह किसी भी हालत में उस कोठरी में नहीं जायेगा।

डर के मारे बडगे के हाथ-पाँव फूल गये थे। उसके मन में यह बात बैठ गयी थी कि वह कोठरी मौत का फन्दा है; दरवाज़े पर काने को देखने के बाद अगर वह कोठरी में घुसा तो उसमें से ज़िन्दा नहीं निकल पायेगा। उसने अपने दोनों साथियों से विनती की कि वे उसे खुली मीटिंग में 'सामने से गांधीजी को गोली मारने दें।' नाथूराम और आप्टे उसे समझाते रहे कि डरने की कोई बात नहीं है और बचकर भाग निकलने की बिलकुल पक्की योजना बना ली गयी है। लेकिन बडगे किसी भी तरह टस-से-मस होने को तैयार नहीं था। गांधीजी वहाँ पहुँच गये थे। सभा शुरू होने से पहले लगभग एक दर्जन लड़कियों की प्रार्थना गाने की आवाज़ गूंजने लगी। प्रार्थना पच्चीस मिनट से ज़्यादा शायद ही कभी चलती हो!

सूरज डूबने को था, और आधे घंटे में इतना अँधेरा हो जाता कि कुछ भी ठीक से दिखायी न देता।

उनके सामने बडगे की बात मान लेने के अलावा और कोई चारा नहीं था। बडगे को खुली मीटिंग में गांधीजी पर गोली चलाने की इजाज़त दे दी गयी।

लेकिन बडगे ने गांधीजी की हत्या करने का विचार बिलकुल ही त्याग दिया। वह हत्या की साज़िश में तो अनमनेपन से शामिल हुआ था, लेकिन ऐन वक़्त पर वह अपना हाथ खींच रहा था। उसकी मानसिक प्रक्रिया अब उल्टी दिशा में चल रही थी। शेखी की वजह से उसके मन में यह चिंगारी भड़क उठी थी; अब डर के मारे वह आग बुझ चली थी। लेकिन यह मान लेना ग़लत होगा कि छोटूराम की कोठरी नं० 3 के सामने बैठे हुए काने आदमी की वजह से गांधीजी को दस दिन और ज़िन्दा रहने का मौक़ा मिल गया था। जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा, अगर बडगे योजना के अनुसार काम करने के लिए तैयार भी हो गया होता तो भी वह उस कोठरी के झरोखे में से अपने रिवाल्वर से गोली नहीं चला सकता था।

शंकर को बदली हुई योजना समझाने के बहाने बडगे उसे बाहर खड़ी हुई टैक्सी के पास ले गया, जबकि बाक़ी षड्यंत्रकारी घबराये हुए बग़ीचे में टहलते रहे। संयोग से टैक्सीवाला वहाँ मौजूद नहीं था इसलिए बडगे को अपना और शंकर का, दोनों रिवाल्वर कंधे पर पड़े हुए अँगोछे में लपेट लेने के लिए बहुत काफ़ी समय मिल गया। उसने यह पोटली टैक्सी की पिछली सीट पर रख दी। उसने हथगोला शंकर को अपने पास रखने के लिए दे दिया और साथ ही उसे यह चेतावनी भी दे दी कि जब तक बडगे उससे न कहे तब तक वह 'उसे इस्तेमाल न करे।' उसने अपनी दोनों मुट्ठियाँ बन्द करके अपने कुरते की जेबों में डाल लीं, ताकि बाहर से देखने में ऐसा लगे कि वह उनमें रिवाल्वर और हथगोला दोनों चीज़ें रखे है। फिर वह और शंकर बाक़ी लोगों के पास चले गये।

इसके बावजूद कि अब वह बिलकुल निहत्था था, बडगे बड़ी ढिठाई से आप्टे के पास गया। बडगे ने बाद में कहा कि आप्टे ने उससे पूछा तो 'मैंने उसे बतलाया कि मैं बिलकुल तैयार हूँ और यह कहकर जहाँ प्रार्थना-सभा हो रही थी, उस ओर चल पड़ा। मैंने आप्टे को मदनलाल के कंधे पर हाथ रखकर उससे "चलो!" कहते सुना।'

इस तरह मदनलाल को बलि का बकरा बना दिया गया।

लेकिन इस तरह वहाँ पर एकत्रित सैकड़ों निर्दोष श्रोता भी बे-मौत मरने से बच गये; वे सीधे-सादे लोग जो प्रार्थना-सभा में उसी श्रद्धा से जाते थे जैसे वे मंदिर में जाते थे, बस महात्माजी के दर्शन करने। उस दिन भीड़ बहुत कम थी, मुश्किल से 200 आदमी रहे होंगे; लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनमें से कम-से-कम आधे तो ज़रूर उन पाँच हथगोलों की चपेट में आ जाते जो उनके बीच फेंके जाने वाले थे। आप्टे और नाथूराम का यह सोचना कि एक आदमी की जान लेने के लिए इतने बहुत-से लोगों को मौत के घाट उतार देने में कोई हर्ज नहीं था, यही साबित करता है कि उनके दिमाग़ किस हद तक बीमार थे। मारे जाने वाले ज़्यादातर हिन्दू ही होते और यह काम भी उतनी ही बेदर्दी का होता जितना मुसलमानों के अत्याचार, जिनका बदला ये लोग लेने की कोशिश कर रहे थे।

बिड़ला हाउस के नौकरों के क्वार्टरों से लगभग सौ गज़ दूर नं० 9 अल्बुक़र्क़ रोड के नौकरों के क्वार्टर थे, और इनमें से एक में नानकचन्द अपनी नौजवान बीवी सुलोचना के साथ रहता था। उनका तीन बरस का बेटा महिन्दर हमेशा भागकर बिड़ला हाउस के नौकरों के बच्चों के साथ खेलने चला जाता था। 20 जनवरी की शाम को जब सुलोचना अपने बेटे को ढूंढ़ती हुई बिड़ला हाउस के पिछवाड़े गयी थी तो उसने 'एक आदमी को वहाँ बम रखते और फिर माचिस जलाते देखा। मैंने अपने बच्चे को ज़बरदस्ती गोद में उठा लिया...और बम में लगी हुई डोरी में से, या जो भी चीज़ उसमें लगी थी, चिंगारियाँ निकलते देखीं।'

मदनलाल ने भी सुलोचना को देखा। सच तो यह है कि उसी ने उससे अपने बच्चे को उठाकर वहाँ से भाग जाने को कहा था। इसके बाद वह आप्टे को ख़बर देने जल्दी से मीटिंग की तरफ़ चला गया।

'मैंने आप्टे को जाकर बतलाया कि बम किसी भी क्षण फटने वाला है। आप्टे ने मुझे विश्वास दिलाया कि हर चीज़ पूरी तरह क़ाबू में है।'

आप्टे को अपने दोनों सूरमा बडगे और शंकर गांधीजी के इधर-उधर खड़े हुए दिखायी दे रहे थे और लगता था कि बम फटते ही किसी भी क्षण वे उन पर गोलियों की बौछार कर देने के लिए बिलकुल तैयार हैं। उसके बाद सूरमाओं की दूसरी पाँत अपने जौहर दिखायेगी। करकरे, मदनलाल, गोपाल और उनके साथ ही बडगे और शंकर भी गांधीजी पर और उनके चारों ओर खड़े हुए लोगों पर हथगोले फेंकेंगे।

धमाका हुआ। भीड़ में हर आदमी ने उसे सुना। लेकिन किसी ने न गोली चलायी और न हथगोला फेंका। मदनलाल लगातार शंकर पर अपनी नज़रें जमाये था; उसने देखा कि वह वहाँ से 'भाग खड़ा हुआ', और फिर उसने देखा कि बडगे भी भाग रहा था। उसी वक़्त आप्टे ने उसका कंधा थपथपाकर कान में कहा कि योजना गड़बड़ हो गयी।

मदनलाल पहले कभी बिड़ला हाउस नहीं गया था, इसलिए उसकी समझ में नहीं आया कि कहाँ जाये। वह उस ओर भागा जिधर उसके विचार से बाहर निकलने का फाटक होना चाहिए था, लेकिन वह बिड़ला हाउस की शानदार बरसाती में पहुँच गया। वह तेज़ी से पीछे मुड़ा और झाड़ियों को फाँदता हुआ सड़क की ओर भागा; लेकिन वह सड़क तो सदर फाटक की ओर जाती थी और वहाँ पुलिसवालों की एक टुकड़ी खड़ी हुई थी जो बहुत उत्तेजित दिखायी दे रही थी। मदनलाल इस वक़्त किसी भी हालत में इसके लिए तैयार नहीं था कि उसकी तलाशी ली जाये, क्योंकि हथगोला अभी तक उसकी जेब में ही रखा हुआ था। वह पीछे मुड़कर सरपट भागा और किसी तरह नौकरों के आने के उसी फाटक के पास पहुँच गया जिससे वह अन्दर आया था। वह फिर उसी जगह के पास पहुँच गया जहाँ उसने बम रखा था। वह औरत अपने बच्चे को लिये वहाँ खड़ी थी और एक हथियारबन्द पुलिसवाले और दो दूसरे आदमियों से कुछ कह रही थी। उसने मदनलाल की ओर उंगली उठाकर इशारा किया और चिल्लाकर कहा, 'यही है।'

टैक्सी-ड्राइवर सुरजीतसिंह ने गांधीजी को पहले कभी नहीं देखा था। आज उसने देखा था कि उन्हें कुर्सी पर बिठाकर कंधों पर मीटिंग में लाया जा रहा है। अनशन समाप्त करने के बाद गांधीजी पहली बार जनता के सामने जा रहे थे। अभी तक

वह इतने कमज़ोर थे कि चल नहीं सकते थे। भीड़ के बाहरी छोर पर खड़े सुरजीत ने गीता के श्लोकों का पाठ होते सुना, और उसके बाद गांधीजी ने बोलना शुरू किया। लेकिन सुरजीत को सिर्फ़ किसी के धीरे-धीरे बुदबुदाने की आवाज़ सुनायी दी। लगभग बीस मिनट बाद किसी ने उससे कहा कि माइक्रोफ़ोन काम नहीं कर रहा है। निराश होकर वह धीरे-धीरे उधर चल दिया जहाँ उसने अपनी मोटर खड़ी की थी। उसने धमाका सुना था, लेकिन ठीक से याद नहीं कि जब धमाका हुआ तो वह मीटिंग में था या अपनी टैक्सी के पास वापस पहुँच चुका था। गोपाल गोडसे का कहना है कि सुरजीत बम फटने के दो-चार मिनट बाद अपनी टैक्सी के पास पहुँचा होगा।

गांधीजी की जीवनी के लेखक तेन्दुलकर ने लिखा है: 'धमाका इतने ज़ोर का था कि दूर तक सुना जा सकता था, लेकिन गांधीजी तनिक भी परेशान नहीं हुए।' उन्होंने अपना भाषण जारी रखा, जैसे कुछ हुआ ही न हो और थोड़ी ही देर में उद्विग्न भीड़ भी शान्त होकर बैठ गयी। प्रार्थना-सभा का सारा कार्यक्रम हमेशा की तरह चला। समूह-गीत, भाषण, क़ुरान, बाइबिल और गीता का पाठ और अन्त में रामधुन गायी गयी: ईश्वर अल्लाह तेरे नाम; सबको सन्मति दे भगवान।

इस घटना पर गांधीजी की प्रतिक्रिया बिलकुल उनके स्वभाव के अनुकूल हुई। रात को घटना की चर्चा करते हुए उन्होंने मदनलाल की प्रशंसा की। उन्होंने कहा, 'लड़का बहादुर है,' और उसकी तुलना भगतसिंह से की। गांधीजी ने यह भी कहा: 'बच्चे हैं, अभी ये समझते नहीं। मरूँगा तो याद करेंगे कि बूढ़ा ठीक कहता था।'

जब गोपाल गोडसे ने शंकर और बडगे को भागते देखा तो उसके मन में भी सबसे पहले यही विचार उठा कि भाग जाये। लेकिन जब वह बाहर खड़ी हुई टैक्सी के पास पहुँचा तो उसने पीछे की सीट पर रखी हुई सफ़ेद पोटली देखी और फ़ौरन समझ गया कि उसमें क्या है। उसने देखा कि ड्राइवर वहाँ मौजूद नहीं है तो अचानक उसके मन में यह विचार उठा कि अकेले अपने-आप ही यह काम पूरा कर देने का अच्छा मौक़ा है। उसने पोटली उठाकर कपड़े के उस थैले में रख ली, जिसमें उसका हथगोला रखा हुआ था, और नौकरों के क्वार्टर की ओर झपटा। उस वक़्त हर आदमी इधर-उधर भाग रहा था, इसलिए किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। नौकरों के सारे क्वार्टर अचानक ख़ाली हो गये थे और उनके दरवाज़ खुले हुए थे। वह बेधड़क छोटूराम की कोठरी में चला गया और अन्दर से कुंडी चढ़ाकर दरवाज़ा बन्द कर लिया; फिर उसने पोटली में से बड़ा रिवोल्वर निकाला।

झरोखे पर नज़र डालते ही उसे अन्दाज़ा हो गया कि वह इतनी ऊँचाई पर था कि उसमें से प्रार्थना-सभा का मैदान नहीं देखा जा सकता था। उसने उछलकर झरोखों में अपने हाथ डालकर जाली को पकड़ तो लिया, लेकिन अपने शरीर को उस स्थिति में रखने पर दोनों हाथ फँसे रहते। कुछ देर तक वह एक हाथ से झरोखा पकड़कर दूसरे हाथ में रिवाल्वर संभालने की कोशिश करता रहा, लेकिन यह नामुमकिन था। वह झरोखा छोड़कर दरवाज़े की ओर भागा और कुंडी खोलने की कोशिश करने लगा। जब कुंडी नहीं खुली तो उसको पसीना छूटने

लगा। कुछ देर तक वह उससे जूझता रहा और यह सोचकर सहम उठा कि वह कोठरी में बन्द हो गया है। उसने झोला नीचे रख दिया और दोनों हाथों से ज़ोर से कुंडी खींची, कुंडी उखड़ गयी और अचानक दरवाज़ा खुल गया। वह बाहर खड़ी हुई टैक्सी की तरफ़ भागा। नाथूराम, आप्टे और करकरे पहले ही से वहाँ मौजूद थे और उनका ड्राइवर भी आ गया था। वे सब जल्दी-जल्दी मोटर में ठुँस गये और उससे जल्दी मोटर स्टार्ट करने को कहने लगे। उसने उन्हें वापस कनॉट प्लेस पहुँचा दिया।

छोटूराम की कोठरी का फ़र्श बाहर की ज़मीन से, जहाँ से आप्टे ने बड़ी आसानी से झरोखे की ऊँचाई नापी थी, बहुत नीचा था। दरअसल कोठरी के अन्दर झरोखे फ़र्श से सात फ़ुट की ऊँचाई पर थे। और अगर गोपाल उनमें से रिवाल्वर नहीं चला सका तो बडगे के लिए भी रिवाल्वर चला सकने का कोई सवाल पैदा नहीं होता। गोपाल बहुत लम्बा नहीं है; उसका क़द मुश्किल से पाँच फ़ुट आठ इंच होगा, लेकिन बडगे तो पाँच फ़ुट का ही था।

मोटर में करकरे ने उनसे मराठी में कहा कि उसने पुलिस को मदनलाल को पकड़कर बिड़ला हाउस के फाटक के बाहर लगे हुए तम्बू की ओर ले जाते देखा था। उसने यह भी बतलाया कि मदनलाल से उसकी आँखें चार हुई थीं और उसने इशारों-इशारों में उसे समझा दिया था कि उसके दोस्त उसका साथ नहीं छोड़ेंगे।

टैक्सी से उतरकर वे टहलते हुए रीगल सिनेमा के सामने वाले मैदान में गये और एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये। विफलता के आभास से उनके दिमाग़ ने काम करना बन्द कर दिया था। तुरन्त क्या किया जाये, अब वे सिर्फ़ यही बात कर रहे थे। करकरे महसूस कर रहा था कि उस पर मदनलाल की ख़ास ज़िम्मेदारी है, इसलिए वह दिल्ली में एक दिन और रुककर मालूम करना चाहता था कि वह उसकी क्या मदद कर सकता है? इसके बाद उसका इरादा बम्बई जाकर कहीं चुपचाप पड़े रहने का था। गोपाल फ़ौरन पूना अपनी नौकरी पर लौटना चाहता था, इसलिए उसने अगले ही दिन पंजाब मेल से चले जाने का फ़ैसला कर लिया। आप्टे और नाथूराम उसी रात दिल्ली से जा रहे थे, लेकिन बम्बई की बजाय किसी और तरफ़।

एक-दूसरे का दिल बढ़ाने के लिए वे हाथ मिलाकर विदा हो गये। जिस थैले में दोनों रिवाल्वर थे, वह अभी तक गोपाल के हाथ में था और वह उसे अपने साथ लेता गया। बाद में उसे इसकी वजह से बहुत पछताना पड़ा।

आप्टे और नाथूराम पैदल चलकर वहाँ से थोड़ी ही दूर पर मैरीना होटल पहुँच गये और बिल चुकाकर होटल छोड़ दिया; उन्होंने धोबी के कपड़ों के बारे में कुछ न पूछने में ही अपनी भलाई समझी। करकरे और गोपाल कुछ देर तक कॉफ़ी की एक दुकान में बैठे रहे, फिर ताँगा लेकर हिन्दू महासभा भवन चले गये। उन्होंने देखा कि बडगे वहाँ से अपना सामान लेकर पहले ही जा चुका है। वे भी अपना सामान लेकर पुरानी दिल्ली चले गये, जहाँ स्टेशन के पास ही उन्हें एक सस्ता-सा होटल दिखायी दिया—फ्रंटियर हिन्दू होटल। यहाँ उन्होंने एक दिन के लिए कमरा ले लिया; गोपाल ने अपना नाम 'राजगोपालन' लिखाया और करकरे ने 'जी० एम० जोशी'।

बिड़ला हाउस से निकलकर बडगे ने ताँगा किया। वह और शंकर हिन्दू महासभा भवन में करकरे के कमरे में गये, जहाँ वे अपना सामान छोड़ आये थे। वह 'अपना

बिस्तर बाँधने' में व्यस्त हो गया और शंकर से उसने कहा कि हथगोलों और विस्फोटकों को, जो उसके थैले में थे, भवन के पीछे जाकर जंगल में गाड़ आये। शंकर के चले जाने के बाद आप्टे और नाथूराम टैक्सी पर वहाँ आये और बडगे से पूछने लगे कि उसने अपना काम क्यों नहीं किया ? बडगे ने 'गालियाँ देकर उन्हें वहाँ से निकल जाने को कहा और वे चले गये।'

शंकर के वापस आते ही बडगे ने उसे ताँगा लाने भेज दिया और उस पर बैठकर दोनों नयी दिल्ली स्टेशन गये। लेकिन स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर हर तरफ़ पुलिस-ही-पुलिस दिखायी दे रही थी, इसलिए वे पुरानी दिल्ली स्टेशन चले गये। यहाँ उन्हें बहुत ज़्यादा पुलिस वाले नहीं दिखायी दिये और बम्बई की गाड़ी आधे घंटे में छूटने वाली थी। वे एक ठसाठस भरे हुए डिब्बे में घुस गये और दो दिन बाद पूना पहुंच गये।

बडगे को उस वक़्त मालूम नहीं था कि आप्टे और नाथूराम भी पुरानी दिल्ली स्टेशन पर मौजूद हैं, लेकिन किसी दूसरे प्लेटफ़ार्म पर। वे रात को कानपुर जाने वाली ट्रेन के फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठे थे। बडगे की ट्रेन के कुछ ही मिनट बाद उनकी भी गाड़ी चल पड़ी। वे चार बर्थ वाले कम्पार्टमेंट में अकेले ही थे, इसलिए खुलकर बातें कर सकते थे।

आप्टे ने बाद में करकरे को बतलाया :

यह तो सच है कि हम अपनी विफलता पर बहुत दुखी थे, लेकिन हमारा दृढ़ संकल्प टूटा नहीं था, और अब हाथ खींच लेने का—अपने कारोबार और पारिवारिक जीवन का पुराना ढर्रा अपना लेने का—कोई सवाल नहीं था। मैं नाथूराम से लगातार कहता रहा :

'अब हम अपने क़दम पीछे नहीं हटा सकते। हम एक बार फिर कोशिश करेंगे, नये लोगों को साथ लायेंगे, और ज़्यादा पैसा जमा करेंगे। लेकिन अब हम काम अधूरा नहीं छोड़ सकते।'

नाथूराम ने ज़्यादा कुछ नहीं कहा, लेकिन मुझे ऐसा लगा कि वह मुझसे पूरी तरह सहमत नहीं है। अगली सुबह मुझे लगा कि वह कुछ सोच रहा था। आधी रात के बाद मेरी आँख लग गयी। मुझे ठीक से नींद नहीं आयी और दूसरी सुबह लगभग छः बजे मेरी नींद पूरी तरह टूटी भी नहीं थी कि मैंने नाथूराम को कहते सुना :

'नाना, नींद तो ठीक से आयी ?'

मैं कुछ बुड़बुड़ाया और अँगड़ाई लेते हुए मैंने उनींदे स्वर में जवाब दिया :

'ऊँ-हूँ, और तुम्हें ?'

उसने मेरे सवाल का जवाब देने के बजाय कहा :

'यह काम मैं करूँगा। मुझे किसी की मदद नहीं चाहिए, कोई दूसरा आदमी नहीं चाहिए। कोई आदमी शामिल नहीं किया जायेगा, अब किसी और पर भरोसा नहीं किया जायेगा।'

मेरी आँखें अभी तक बन्द थीं, और मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि उस क्षण मैंने गांधी को मरा हुआ देखा।

ट्रेन बुधवार इक्कीस तारीख़ को दोपहर से कुछ पहले कानपुर पहुँची। उस वक़्त तक दिल्ली की पुलिस मदनलाल से इतनी काफ़ी जानकारी हासिल कर चुकी थी कि वह अहमदनगर के 'करकरा सेठ' और 'पूना के एक राष्ट्रीय अख़बार के मैनेजर' की तलाश करने लगी थी। पुलिस को दूसरे लोगों का भी अच्छा-ख़ासा विवरण मिल गया था, जैसे यह कि 'एक आदमी जो अपने को देशपांडे कहता था और मैरीना होटल में ठहरा था (आप्टे)। एक दाढ़ी वाला आदमी (बडगे) और उसका बीस साल का नौकर।' उसी बुधवार की शाम को दिल्ली पुलिस के दो इंस्पेक्टर हवाई जहाज़ से बम्बई गये।

कानपुर में नाथूराम ने रेलवे स्टेशन के दफ़्तर में जाकर अपने नाम से दो पलंगों वाला एक रिटायरिंग-रूम बुक कराया। सारा दिन उन्होंने स्टेशन पर ही बिताया। दूसरी सुबह साढ़े ग्यारह बजे उन्होंने लखनऊ-झाँसी मेल पकड़ा, जिससे झाँसी पहुँचने पर उन्हें दिल्ली से बम्बई जाने वाला पंजाब मेल मिल गया। 23 जनवरी की दोपहर को वे बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर उतरे और शहर के एक सस्ते होटल में गये, जहाँ आप्टे पहले भी कई बार अपनी रखैल के साथ ठहर चुका था। यह होटल था सैंडहर्स्ट रोड पर आर्य पथिकाश्रम; उसका मैनेजर गयाप्रसाद दुबे आप्टे को ख़ास गाहक समझता था, जो हमेशा 'अपने लिए अलग एक पूरा कमरा' माँगता था और उसके पैसे देता था। लेकिन दुबे इस बार आप्टे और उसके दोस्त को अलग कमरा नहीं दे सका। दरअसल, उस वक़्त तो वह उनके लिए बस इतना ही कर सकता था कि उन्हें एक कमरे में दो चारपाइयाँ दे दे, जिसमें छः लोग और रहते थे; लेकिन उसने वादा किया कि सुबह तक कोई बेहतर इन्तज़ाम कर देगा।

आप्टे और नाथूराम अपना सामान होटल में छोड़कर सीधे जी० एम० जोशी के घर ठाणे गये, जहाँ करकरे बम्बई आने पर आमतौर पर ठहरता था। लेकिन करकरे के दिल्ली जाने के बाद से जोशी को उसका कोई पता नहीं था, इसलिए वे दो-तीन और लोगों के पास गये, जिनके यहाँ करकरे जाया करता था। यह देखते हुए कि नयी योजना एक ही आदमी को पूरी करनी थी, करकरे से सम्पर्क स्थापित करने की उनकी उत्सुकता कुछ अजीब लगती है, लेकिन मदनलाल की गिरफ़्तारी के बाद से उनका सम्पर्क बिलकुल टूट गया था और उन्हें यह भी मालूम नहीं था कि बाक़ी लोगों में से कोई अभी तक पुलिस के चंगुल से बचा हुआ है या नहीं। उन्हें यह भी भरोसा नहीं था कि वे बम्बई में ही रहेंगे या पूना चले जायेंगे, इसीलिए वे जिन लोगों के घरों पर गये उनके यहाँ उन्होंने यह भी नहीं बतलाया कि अगर करकरे आये तो वह उन लोगों से कहाँ सम्पर्क करे।

शाम को उन्होंने अपने एक दोस्त को पूना भेजकर गोपाल से यह कहला दिया कि वे बम्बई पहुँच गये हैं और मिस साल्वी को मालूम होगा कि वे कहाँ ठहरे हैं।

वे बहुत रात गये होटल लौटकर आये। सुबह मैनेजर ने आकर आप्टे से कहा कि उन्हें दो आदमियों के लिए अलग एक कमरा मिल सकता है। आप्टे फ़ौरन राज़ी हो गया। उसके बाद वे पास ही कर्नाक रोड पर एलफ़िंस्टन एनेक्सी होटल में गये और वहाँ एक और कमरा बुक करा लिया। नाथूराम ने यह कमरा 'एन० विनायकराव और मित्र' के नाम से लिया था। आर्य पथिकाश्रम के मैनेजर के बयान के अनुसार, आप्टे दोपहर से कुछ पहले लौटकर आया; उसके साथ 'एक

महिला थीं जो 24 जनवरी को सारा दिन और 24 व 25 के बीच की रात को उसके साथ ही रहीं।' पच्चीस तारीख को सुबह इतवार के दिन आप्टे दूसरे कमरे के होटल में चला गया। वह 'महिला', मनोरमा साल्वी, उसके साथ ही चली गयीं और उसके साथ अगले दो दिन तक रहीं। नाथूराम सिनेमा देखने या और कहीं चला जाता था, ताकि दोनों ज्यादा-से-ज्यादा देर एक-दूसरे के साथ रह सकें।

आठवाँ अध्याय

वे फिर आयेंगे।

—मदनलाल पाहवा

मदनलाल के गिरफ़्तार होने के दूसरी शाम को अपनी प्रार्थना-सभा में गांधीजी ने स्नेह-भरे शब्दों में उसकी चर्चा की :

> जिस गुमराह नौजवान ने बम फेंका था, उसे तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। शायद वह मुझे हिन्दू धर्म का दुश्मन समझता था। गीता में ही तो कहा गया है : 'यदायदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत!'

भारत की पुलिस की तफ़तीश के तौर-तरीक़ों के बारे में थोड़ा-बहुत जानने के कारण उन्होंने पुलिस के इंस्पेक्टर-जनरल से खासतौर पर अपील की कि 'उस नौजवान को किसी तरह सताया न जाये।'

मदनलाल का बयान है कि उसे न सिर्फ़ सताया गया बल्कि उसे घोर पैशाचिक यन्त्रणाएँ भी दी गयीं। उसके पाँवों के तलुओं को मोटी रस्सी से पीटा जाता था और साथ ही सवालों की बौछार की जाती थी; उसे फ़र्श पर लिटाकर दोनों हथेलियों पर चारपाई के दो पाये रख दिये जाते थे और चारपाई पर एक पुलिस वाला कूदता रहता था; उसके लिंग और अंड-कोष के साथ तरह-तरह का अनाचार किया जाता था और उन पर लाठियों से चोट की जाती थी। एक यन्त्रणा से वह सबसे ज्यादा डरने लगा था और वह शायद यहीं की विशेषता थी—'चींटियों की यन्त्रणा'। वे लोग अपनी उँगलियों में बड़े-बड़े लाल चींटे पकड़कर उन पर थूककर उन्हें उत्तेजित करते थे और उसके नंगे शरीर पर छोड़ देते थे।

वह चिल्लाता था, जानवरों की तरह चीखता था, लेकिन कुछ बतलाता भी था—और वह जो कुछ कहता यह कहकर दर्ज कर लिया जाता था कि उसके साथी 'उसे छोड़कर भाग गये थे और उन्हें पकड़वाना वह अपना कर्तव्य समझता है'। इसलिए उसने ये सारी बातें अपने आप क़बूल कीं।

वह आज तक समझता है कि पूछताछ के दौरान उसके ऊपर जो कुछ बीती

उसे दूसरा आदमी बरदाश्त नहीं कर सकता था, लेकिन उसे गर्व था कि उसने सारी बातें नहीं बतलायीं जो उसे मालूम थीं। उलटे-सीधे बयान देकर और यह जताकर कि वह मराठी बिलकुल नहीं समझता, मदनलाल अपने साथियों की असलियत पर परदा डाले रहा।

ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर से चीख़-चिल्लाकर, ऊटपटाँग बातें बककर और फिर बीच-बीच में कानाफूसी के ढंग से कुछ कहकर और दुनिया-भर की ख़ुराफ़ात बतलाकर, जो पुलिस के रोज़नामचे में ज्यों-की-त्यों दर्ज कर ली जाती थी, वह बस इतने ही समय तक पुलिस को गुमराह किये रह सका कि दुबारा हमला करने से पहले साज़िश के सरग़ना पकड़े न जायें।

मदनलाल ने जो कुछ वह जानता था भले ही न बतलाया हो, फिर भी उसने उन्हें काफ़ी बातें बतला दी थीं। अगर पुलिस ने कुछ भी मुस्तैदी दिखायी होती तो इसमें शक है कि नाथूराम गोडसे या साज़िश में शरीक़ दूसरे लोग 30 जनवरी को, जिस दिन गांधीजी की हत्या की गयी थी, पुलिस के चंगुल से बाहर होते।

बिड़ला हाउस के नौकरों के क्वार्टरों की तीन नम्बर की कोठरी में रहने वाले छोटूराम ने पुलिस को बतलाया था कि किस तरह कुछ लोग उसकी कोठरी में खड़े होकर गांधीजी का फ़ोटो लेने की इजाज़त लेने आये थे, और उसने उन लोगों का जो हुलिया बतलाया, वह मदनलाल के बताये हुए हुलिये से पूरी तरह मेल खाता था। मदनलाल की गिरफ़्तारी के तीन घंटे के अन्दर पुलिस को यह मालूम हो चुका था कि उसने जो कुछ किया, वह गांधीजी की हत्या करने के लिए इशारा-भर था और भरपूर हमले की पूरी तैयारी पहले से कर रखी गयी थी, आख़िरी हिदायतें मैरीना होटल के एक कमरे में दी गयी थीं। बहुत रात गये वे मदनलाल को मैरीना होटल में ले गये। होटल के मैनेजर श्री सी० पचेको ने बाद में अपनी गवाही में बतलाया : 'जब उसे लाया गया उस वक़्त उसके हथकड़ियाँ पड़ी हुई थीं और चेहरा ढका हुआ था। उसके चेहरे पर से कपड़ा हटाकर उससे वह कमरा बतलाने को कहा गया, जहाँ उसके दोस्त ठहरे थे। वह उन्हें 40 नम्बर के कमरे में ले गया।'

पुलिस ने पंच बुलवाकर कमरे की तलाशी ली। मेज़ की एक दराज़ में से उन्हें एक टाइप किया हुआ काग़ज़ मिला। यह हिन्दू महासभा के जनरल-सेक्रेटरी आशुतोष लाहिड़ी का वही बयान था, जिसमें उन्होंने कहा था कि उनकी पार्टी ने उस सात-सूत्री शपथ पर हस्ताक्षर नहीं किये थे, जिसके आधार पर गांधीजी ने अपना अनशन समाप्त किया था।

बाद में इस मुक़दमे की सुनवाई करने वाले जज श्री आत्माचरण ने इस सबूत को अस्वीकृत ठहरा दिया और 'उसे यह कहकर बिलकुल रद्द कर दिया कि उसकी बुनियाद पर कोई नतीजा नहीं निकाला जा सकता।' लेकिन उस वक़्त तो पुलिस को यह शुबहा पैदा हो ही गया कि गांधीजी की हत्या करने की साज़िश में हिन्दू महासभा शामिल है और हिन्दू महासभा से आगे बढ़कर पुलिस सावरकर तक पहुँच गयी।

जब वे 40 नम्बर के कमरे की तलाशी ले चुके और पंचों के सामने वहाँ से बरामद हुई चीज़ों की फ़ेहरिस्त बन गयी तो आधी रात बीते बहुत देर हो चुकी थी। इसके बाद भी मदनलाल से सवाल-जवाब जारी रहे। यह बहुत ज़रूरी था कि किसी तरह उसे सोने न दिया जाये। पूछताछ करने वाले एक अफ़सर की डायरी में लिखा है कि वह 'बिलकुल ऐसे बोल रहा था जैसे कान में कोई बात

कह रहा हो'। अगले दिन सुबह उसे पुरानी दिल्ली स्टेशन ले जाया गया।

दिल्ली से दो ट्रेनें सुबह बम्बई जाती हैं; फ्रंटियर मेल आठ बजे और पंजाब मेल नौ बजे। गोपाल गोडसे पंजाब मेल से जा रहा था और करकरे उसे पहुँचाने स्टेशन आया था। गोपाल को तीसरे दर्जे के एक डिब्बे में सीट मिल गयी थी और उसने कपड़े का वह थैला, जिसमें दोनों रिवाल्वर और बाक़ी बचे हुए हथगोले रखे थे, सीट के नीचे सरका दिया था। इसके बाद वह और करकरे प्लेटफ़ार्म पर चायख़ाने में नाश्ता करने चले गये थे। गोपाल ने बाद में इस लेखक को बताया :

> हम अभी बैठे ही थे कि हमने देखा कि पुलिस वालों की एक टोली एक आदमी को लेकर वहाँ आयी, जिसका सिर और कंधे एक कत्थई कम्बल से ढँके हुए थे। कम्बल हटाये जाने से पहले ही हम समझ गये थे कि वह मदनलाल है। हमें पक्का यक़ीन था कि उसने पुलिस को हमारे नाम बता दिये हैं और हमारी शिनाख़्त करने के लिए ही उसे स्टेशन पर लाया गया था।

चायख़ाना काफ़ी बड़ा था, कोई चालीस फ़ुट लम्बा और तीस फ़ुट चौड़ा रहा होगा, और वहाँ बहुत ज़्यादा भीड़ भी नहीं थी। मदनलाल से अच्छी तरह चारों तरफ़ नज़र दौड़ाकर देखने को कहा गया; दो पुलिस वाले लगातार उसकी आँखों को देख रहे थे कि वह किसी को पहचानता तो नहीं है। पूरे कमरे पर नज़र डालने के बाद उसने इंकार में अपना सिर हिला दिया। पुलिस वालों ने उसके सिर पर फिर कम्बल डाल दिया और उसे वहाँ से लेकर बाहर चले गये। गोपाल ने मुझसे यह भी कहा : 'हमारी क़िस्मत थी कि उसने हमारी तरफ़ नहीं देखा।'

लेकिन गोपाल का ऐसा समझना उसकी भूल थी। मदनलाल के सिर पर से जैसे ही कम्बल हटाया गया था उसने गोपाल को भी देखा था और अपने दोस्त करकरा सेठ को भी, लेकिन वह उन्हें पहचानकर भी अनजान बन गया था और उनके पार देखता रहा। पूरे कमरे पर नज़र डालने के बाद ही उसने इंकार में अपना सिर हिलाया था। पुलिस वाले मदनलाल को साथ लेकर ट्रेन के डिब्बों की तलाशी लेने लगे। जब वे ट्रेन के दूसरे सिरे पर निकल गये तो गोपाल अपने डिब्बे में आकर चुपचाप अपनी सीट पर बैठ गया।

मदनलाल के गिरफ़्तार होने के बाद एक साहब, जिन्होंने बहुत तूमार बाँधा, वह थे बम्बई में उसके प्रोफ़ेसर दोस्त डॉ० जगदीशचन्द्र जैन। उनके कई दोस्तों को मालूम था कि वह मदनलाल को जानते थे और कम-से-कम एक दोस्त अंगदसिंह को तो यह भी मालूम था कि मदनलाल ने उन्हें संकेत भी दिया था कि वह गांधीजी की हत्या की साज़िश में शामिल है। जैन ने यह जानकारी पुलिस तक पहुँचाने के लिए कुछ भी नहीं किया था। उन्हें यह ज़रूर महसूस हुआ होगा कि अगर मदनलाल ने इसके बारे में अपने बयान में कुछ भी कहा तो शायद चुप रहने की वजह से वह ख़ुद मुसीबत में फँस जायें।

जैन उस समय चालीस वर्ष के थे। उनके पास हिन्दी में पी० एच-डी० की डिग्री थी और वह एक कॉलेज में प्रोफ़ेसर थे। वह पढ़े-लिखे और समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, जिन्हें एक नागरिक की हैसियत से अपने कर्तव्य और अपनी ज़िम्मेदारियाँ अच्छी तरह मालूम होनी चाहिए। यह बात तो बिलकुल समझ में

आती है कि मदनलाल ने जो कुछ बतलाया उसे शुरू में उन्होंने शरणार्थी की लम्बी-चौड़ी डींग समझकर टाल दिया। लेकिन मदनलाल के गिरफ़्तार हो जाने के बाद जैन अच्छी तरह समझ गये कि उनका स्पष्ट कर्तव्य है कि जो कुछ उन्होंने सुना था, सरकार के किसी ज़िम्मेदार आदमी को बतला दें।

उन्हें करना यह चाहिए था कि सबसे पास वाले थाने में सीधे जाकर रिपोर्ट लिखा देते। इसकी बजाय उन्होंने भारत के उप-प्रधानमन्त्री और बम्बई प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष से मिलने की कोशिश की। ऐसा करने के लिए वह कोई सन्तोषजनक वजह नहीं बतला सके। जब वह उन लोगों से मिलने में असफल रहे तो वह एक तरह से बम्बई के मुख्यमन्त्री बी० जी० खेर पर टूट पड़े।

इक्कीस तारीख़ को चार बजे जैन साहब को श्री खेर से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। लेकिन इससे पहले कि डॉ० जैन मतलब की बात पर आते, श्री खेर उठकर चल दिये, क्योंकि उन्हें किसी काम से जाना था, और उन्होंने डॉ० जैन को अपने गृहमन्त्री मोरारजी देसाई के हवाले कर दिया।

उस समय पुलिस विभाग भी मोरारजी देशाई के ज़िम्मे था और अपने विभाग के साथ पूरा न्याय करने के लिए उन्हें जैन से इतना तो कहना ही चाहिए था कि वह सारी बातें पुलिस को बतला दें। कम-से-कम उन्हें इतनी सावधानी तो बरतनी ही चाहिए थी कि जैन को जो कुछ कहना था वह किसी को बुलाकर लिखवा देते। इसकी बजाय उन्होंने जैन से क़रीब-क़रीब गुप्त बातचीत की और समझ में नहीं आता क्यों उन्होंने डॉ० जैन की यह प्रार्थना मान ली कि अपनी जानकारी का स्रोत 'पुलिस तक को न बतायें।' इसका एक नतीजा यह हुआ कि डॉ० जैन और मोरारजी देसाई की इस मुलाक़ात में किसने क्या कहा, याद करने के लिए बाद में दोनों को पूरी तरह अपनी याददाश्त पर ही भरोसा करना पड़ा। मोरारजी को पूरा यक़ीन है कि साज़िश करने वालों में से मदनलाल ने सिर्फ़ करकरे का नाम बतलाया था, जबकि डॉ० जैन का 'दावा था कि उन्होंने मदनलाल के सभी साथियों के नाम बतलाये थे (जो उन्होंने बाद में पुलिस की छानबीन के दौरान बतलाये) और उन्होंने इस बात की शिकायत की कि इन लोगों को फिर भी गिरफ़्तार नहीं किया गया।'

गांधीजी की हत्या के बाद इस बात को लेकर दोनों में बहुत नाटकीय तू-तू मैं-मैं हुई। डॉ० जैन ने दावा किया कि उन्होंने मोरारजी को क्या-क्या बतलाया था और मोरारजी ने बयान में कहा कि उन्होंने क्या-क्या सुना। डॉ० जैन के अनुसार, मोरारजी

> भड़क उठे और उनसे (जैन से) बोले कि तुम भी साज़िश में शामिल हो और जेल भेजे जा सकते हो और उन्होंने (जैन से) पूछा कि यह जानकारी पहले क्यों नहीं दी गयी? वह जैन पर चिल्लाते रहे और जैन सुनते रहे और...अन्त में उन्होंने मोरारजी से कहा, 'अगर मैं साज़िश में शामिल हूँ तो आप हत्यारे हैं,' और बाद में भी वह सारी दुनिया के सामने यही दोहराते रहे कि 'तुम अपराधी हो, तुम अपराधी हो!'

दोनों में से कोई भी न तो हत्या का अपराधी था, न साज़िश का। लेकिन एक बात तय है। 21 जनवरी को डॉ० जैन ने बम्बई के गृहमन्त्री को बतलाया था कि गांधीजी की हत्या करने की साज़िश की गयी है और यह कि मदनलाल के

अलावा करकरे नाम का एक आदमी, जो अहमदनगर में रहता है, इस साजिश में शामिल है।

डॉ० जैन शाम को पाँच बजे मोरारजी के दफ़्तर से उठकर आये थे और मोरारजी ने फ़ौरन बम्बई की खुफ़िया पुलिस के डिप्टी-कमिश्नर जे० डी० नागर-वाला को बुलवा भेजा था। लेकिन उस समय नागरवाला किसी काम में व्यस्त थे, इसलिए उन्होंने उनसे बम्बई सेंट्रल रेलवे स्टेशन पर मिलने को कहा, जहाँ से वह साढ़े आठ बजे गुजरात मेल पकड़ने वाले थे।

जमशेद दोराब नागरवाला में—जिन्हें उनके बहुत-से दोस्त 'जिम्मी' कहते थे—अपने पेशे की ज़्यादातर ख़ूबियाँ और ज़्यादातर ख़राबियाँ, दोनों ही थीं। उनकी उम्र चौंतीस साल की थी, लम्बा क़द, गठा हुआ शरीर, गोल चेहरे पर बड़ी-बड़ी गोल-गोल आँखें थीं जो कठोरता व्यक्त करने के लिए या अपराधियों को डराने के लिए नहीं बनायी गयी थीं। फिर भी वह बिलकुल अँगरेज़ी फ़िल्मों के पुलिस अफ़सर जैसे लगते थे। वह अपने काम में चौबीस घंटे डूबे रहते थे और अपने पेशे की वजह से मिली ताक़त पर ऐंठे रहते थे। फिर भी वह बहुत हँसमुख और विनोदप्रिय आदमी थे। जितने सच्चे दोस्त थे उतने ही खतरनाक दुश्मन भी; मातहत उन्हें देवता की तरह पूजते थे और अफ़सर उन पर पूरा विश्वास रखते थे।

वह मोरारजी के प्रति भी पूरी तरह वफ़ादार थे और वह भी उन्हें अपना ख़ास आदमी मानते थे, या कम-से-कम उन्हें पुलिस का बेहतरीन अफ़सर तो समझते ही थे। स्टेशन पर मोरारजी ने नागरवाला को डॉ० जैन का नाम बतलाये बिना वह सब-कुछ बतला दिया जो डॉ० जैन ने कहा था। स्मरण रहे कि डॉ० जैन के कथनानुसार मदनलाल को उसका दोस्त करकरे सावरकर से मिलाने ले गया था और उन्होंने दो घंटे तक मदनलाल से उसके कारनामों के बारे में सुनने के बाद उसकी पीठ ठोंककर कहा था, 'ऐसे ही काम करते रहो।'

यह तो कभी मालूम नहीं हो सकेगा कि मोरारजी ने अपने शब्दों से, या, उससे अधिक, अपनी बात कहने के ढंग से, नागरवाला को यह संकेत दिया था या नहीं कि इस शिकायत से सावरकर को, जो काँग्रेस राज के लिए भी उसी तरह काँटा बने हुए थे जैसे अँगरेज़ी राज के लिए थे, क़ाबू में रखने में बहुत मदद मिलेगी। लेकिन लगता है कि मोरारजी देसाई ने जो कुछ भी कहा हो वह इसके लिए काफ़ी था कि जो भी षड्यन्त्र रचा जा रहा था उसमें नागरवाला सावरकर का हाथ ढूंढ़ लें, हालाँकि, जैसा कि आगे चलकर स्पष्ट हो जायेगा, उन्हें उस वक़्त तक इस बात का गुमान भी नहीं था कि यह षड्यन्त्र किस प्रकार का है। नतीजा यह हुआ कि महात्मा गांधी की हत्या को रोकने के लिए पुलिस की आम कार्रवाई के अलावा उन्होंने 'सावरकर के घर पर ख़ुफ़िया तौर से नज़र रखने का भी इन्तज़ाम कर दिया।'

नागरवाला ने बाद में बतलाया, 'सावरकर की हरकतों के बारे में हमारे पास पूरी एक फ़ाइल थी।' ज़रूर होगी। लेकिन इस तरह का ब्यौरा तो उनके पास मोरारजी और नेहरू के बारे में भी रहा होगा, और ख़ुद गांधीजी के बारे में तो बहुत बड़ी फ़ाइल होगी। अँगरेज़ों के ज़माने में इन सभी लोगों को राजद्रोही समझा जाता था।

इस षड्यन्त्र में कोई हाथ होने के आरोप से सावरकर के साफ़ बरी हो जाने के बहुत बाद और पुलिस के सबसे ऊँचे पद, इंस्पेक्टर-जनरल, से रिटायर होने

के कम-से-कम दो वर्ष बाद भी नागरवाला ने इस लेखक से बहुत ज़ोर देकर कहा, 'मरते दम तक मैं यही यक़ीन करता रहूँगा कि सावरकर ही ने गांधीजी की हत्या का षड्यन्त्र रचा था।'

लेकिन इसी तरह, अपनी पूरी सज़ा काट चुकने के बहुत बाद विष्णु करकरे, गोपाल गोडसे और मदनलाल पहावा ने भी अलग-अलग इस लेखक के यह पूछने पर कि क्या उनकी राय में गांधीजी की हत्या से राष्ट्र का हित हुआ था, बहुत ज़ोर देकर यही कहा था कि ज़रूर हुआ।

सचमुच प्रतिबद्ध लोगों की आस्था इतनी ही दृढ़ होती है।

ट्रेन में गोपाल गोडसे को सोचने का बहुत समय मिला। मदनलाल के हाथ में हथकड़ियाँ पड़ी हुई थीं, उसका चेहरा कम्बल से ढँका हुआ था और उसके साथियों का पता लगाने के लिए पुलिस वाले उसे इसी हालत में एक से दूसरी जगह ले जा रहे थे—यह दृश्य लगातार उसे सताता रहा। संयोग की ही बात थी कि मदनलाल की जगह वह नहीं था। उसका दिल पूना अपनी बीवी और अपनी छोटी-छोटी बेटियों के पास वापस जाने और फिर अपने जीवन की एक हफ़्ते पहले वाली दिनचर्या में डूब जाने के लिए बेचैन हो रहा था। इस एक हफ़्ते में जो कुछ हुआ था, उसे धो डालने के लिए अपने जीवन का एक वर्ष देने को तैयार था। लेकिन बाद में हुआ यह कि इस थोड़े-से समय के लिए पड़े पागलपन के दौरे का प्रायश्चित करने के लिए उसे अपने जीवन के सत्रह वर्ष देने पड़े।

और मानो उसे यह बात अच्छी तरह समझाने के लिए कि 'अब पछताये क्या होय जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत,' उसकी यात्रा के अन्त में गोपाल को एक और झटका लगा जिससे वह बिलकुल सहम गया।

वह दादर जंकशन पर उतरकर प्लेटफ़ार्म पर खड़ा पूना जाने वाली गाड़ी का इन्तज़ार कर रहा था कि रेलवे पुलिस के एक सिपाही ने आकर उससे अपना सामान दिखाने को कहा। कपड़े के उस थैले के अलावा, जिसमें वह दोनों रिवाल्वर और बचे हुए हथगोले ले जा रहा था, गोपाल के पास एक बिस्तरबन्द भी था। अपने डर को छिपाने की कोशिश करते हुए उसने चुपचाप अपना बिस्तरबन्द जल्दी-जल्दी खोलना शुरू किया। पुलिस वाले ने उसका बिस्तर टटोलकर देखा और निराश होकर टहलता हुआ चला गया। शायद वह चोरी के किसी सामान की तलाश में था, जो कपड़े के उतने छोटे-से थैले में नहीं आ सकता था। गोपाल को पता नहीं चल सका कि वह किस चीज़ की तलाश में था।

उसकी ट्रेन किरकी बाईस तरीख को पाँच बजे शाम को पहुँची। घर पहुँच-कर वह एक कमरे में बन्द होकर पिछली घटनाओं के बारे में सोचता रहा। उसे सबसे पहले यह चिन्ता थी कि अपने रिवाल्वर हिफ़ाज़त से रखवाँ दे। वह इतना कंजूस था कि उसे रास्ते में यह सूझा ही नहीं कि रात को किसी नदी को पार करते समय वह उन्हें ट्रेन की खिड़की से बाहर फेंक देता, इसलिए दोनों रिवाल्वर और गोलियाँ अभी तक उसके पास थीं। नौ बजते-बजते उसने उनमें से कम-से-कम एक के लिए तो कोई ठिकाना ढूँढ़ लेने का फ़ैसला कर ही लिया था। उसने अपना वाला बड़ा रिवाल्वर निकाला और उसकी गोलियों के साथ बडगे के तौलिये में लपेटकर कपड़े के एक थैले में उसे रख दिया। एक घंटे बाद उसने पूना में एक पारिवारिक मित्र के घर का दरवाज़ा खटखटाया, जो सदाशिव पेठ में रहते थे। उसके उन दोस्त पांडुरंग गोडबोले ने बाद में अपनी गवाही में बतलाया :

'मैंने दरवाज़ा खोला। गोपाल अकेला ही था। उसने मुझसे कहा कि वह मेरे यहाँ कोई चीज़ रखना चाहता है। वह चीज़ थी एक रिवाल्वर और उसकी कुछ गोलियाँ...जो तौलिये में लपेटकर एक थैले में रख दी गयी थीं। मैंने वह थैला बक्स में रख दिया।'

इस तरह एक हथियार तो हिफ़ाज़त से ठिकाने लगा दिया गया। कम-से-कम गोपाल ने यही सोचा। अब उसके पास वह छोटा पिस्तौल बच गया, जो बडगे ने पूना में शर्मा से बदला था। गोपाल के मन में एक बार तो यह विचार आया कि वह बडगे के हाथ वह पिस्तौल उसके असली मालिक को लौटाकर अपने भाई का पिस्तौल उससे वापस ले ले। उसकी तीन दिन की छुट्टियाँ अभी बाक़ी थीं; इस तरह उसके पास दूसरे रिवाल्वर से भी छुटकारा पाने के लिए काफ़ी वक़्त था।

गोपाल की ट्रेन चली जाने के बाद करकरे दिल्ली रेलवे-स्टेशन के चायख़ाने में उस वक़्त तक बैठा रहा जब तक कि उसे यक़ीन नहीं हो गया कि पुलिस की टुकड़ी चली गयी होगी। फिर वह फ्रंटियर हिन्दू होटल में गया और बिल चुकाकर अपना सामान स्टेशन के वेटिंग-रूम में ले आया। तीसरे पहर वह हिन्दू महासभा के अपने दो-एक दोस्तों से मिलने गया।

करकरे बहुत बेचैन था कि मदनलाल के लिए कुछ करे। कोई अच्छा-सा वकील कर दे, जो उसे ज़मानत पर छुड़ाने की कोशिश करे या कम-से-कम उसे पैरवी के बारे में अच्छी सलाह दे सके। उसके दोस्त ऐसे जोखिम के काम में हाथ नहीं डालना चाहते थे, इसलिए उन्होंने मदद करने से इंकार कर दिया। बुधवार और गुरुवार को करकरे तमाम वक़्त घोर निराशा में डूबा हुआ दिल्ली की सड़कों पर घूमता रहा, बस रात को सोने के लिए वेटिंग-रूम में आ जाता था। मदन-लाल के कुछ रिश्तेदारों की मदद से वह मदनलाल की तरफ़ से पैरवी करने के लिए एक वकील करने में कामयाब हो गया। उनका नाम था मेहता पूरनचन्द।

23 जनवरी को जब वह दिल्ली से चला तो उसका अपराधी मन उसे कचोट रहा था कि वह अपने दोस्त का साथ छोड़कर जा रहा है। जैसे जासूसी कहानियों की किताबों में अपराधी पुलिस के चंगुल से बचने के लिए करते हैं, वैसे ही वह मथुरा पर ट्रेन से उतर गया, और बस से आगरा गया, जहाँ उसने दूसरी ट्रेन पकड़ी। रात को उसने दो बार इटारसी में और कल्याण में फिर ट्रेन बदली और पच्चीस तारीख़ को बहुत सबेरे इतवार के दिन ठाणे के स्टेशन पर उतरा।

पाँच बजे सुबह वह नवपाड़ा में जोशी के घर शांता सदन गया और सड़क पर से ही उन्हें पुकारा। इतने सबेरे पहुँच जाने के बावजूद जोशी-परिवार ने बड़े तपाक से करकरे का स्वागत किया। उन लोगों ने उसे सबसे पहली बात यह बतलायी कि आप्टे और नाथूराम दो दिन पहले उसे ढूँढ़ते हुए वहाँ आये थे। करकरे अपने दोस्तों का समाचार पाकर ख़ुशी से नाच उठा और उसका जी चाहा कि किसी तरह फ़ौरन उनसे जाकर मिले, लेकिन जोशी को कुछ भी पता नहीं था कि वे बम्बई में कहाँ ठहरे हैं या यह कि अभी तक वे बम्बई में हैं भी या नहीं। करकरे ने पूना में आप्टे के घर पर एक तार भेजने का फ़ैसला किया। वह जानता था कि पुलिस आप्टे के घर पर नज़र रख रही होगी और वह यह नहीं चाहता था कि किसी को मालूम हो कि वह कहाँ है। इसलिए वह ठाणे से तार नहीं भेजना चाहता था। जोशी के अट्ठारह साल के बेटे वसन्त को बम्बई के केन्द्रीय तारघर भेजा गया, जो ठाणे से बीस मील दूर था। इतवार का दिन होने की वजह से तार

एक्सप्रेस भेजना पड़ा :

आप्टे
आनन्दाश्रम
पूना
दोनों फ़ौरन आओ—व्यास

आपको याद होगा कि करकरे का नक़ली नाम 'व्यास' (या 'ब्यास') रखा गया था ।

जिस वक़्त बिड़ला हाउस पर तैनात पुलिस वाले मदनलाल को गिरफ़्तार करने के बाद उसे हथकड़ी पहनाकर बड़े गर्व के साथ फाटक के बाहर अपने तम्बू की तरफ़ ले जा रहे थे, तब उसने बड़े तिरस्कार से उन्हें घूरकर देखा था और गुर्राकर कहा था : 'फिर आयेंगे !'

यह धमकी सुनकर पुलिस को झटका-सा लगा था। बात इतनी ही नहीं थी कि एक सिरफिरा शरणार्थी चौंका देने वाले ढंग से अपना विरोध प्रकट कर रहा था। उसके और भी साथी थे। वे फिर आयेंगे । कौन ? कब ?

दिल्ली की पुलिस के प्रधान टी० जी० संजेवी ने फ़ौरन हुक्म जारी कर दिया कि बिड़ला हाउस की गारद में पाँच सिपाहियों की बजाय छब्बीस सिपाही रखे जायें, जिनमें से सात आदमी सादे लिबास में हों। उसने अपने कुछ सबसे अच्छे अफ़सरों को मदनलाल से यह मालूम करने पर तैनात कर दिया कि उसके साथी कौन हैं और वे क्या कर रहे हैं।

दिल्ली पुलिस के लगभग एक दरजन अफ़सरों ने बारी-बारी से मदनलाल से सारी बातें मालूम करने की ज़िम्मेदारी संभाल ली। अगले दस दिन तक लगभग लगातार उससे सारी बातें उगलवा लेने की कोशिश की जाती रही। सच तो यह है कि यह सिलसिला 30 जनवरी की शाम को उस वक़्त तक जारी रहा, जब इस कांड के सबसे बड़े अपराधी मदनलाल को यह जानकर बहुत सन्तोष हुआ कि अब वह बहुत मामूली हैसियत का मुजरिम रह गया है।

लेकिन उन दस दिनों में दिल्ली में इस मामले की छानबीन करने वाले अफ़सर उस एक आदमी को ही, जो उनकी पकड़ में आ गया था, रगड़ते रहने में ऐसे लगे कि उन्होंने सूचना के उस स्रोत की ओर ध्यान ही नहीं दिया, जो शायद इतना जटिल न सिद्ध होता और जिस पर शायद भरोसा भी ज़्यादा किया जा सकता—नयी दिल्ली में हिन्दू महासभा का दफ़्तर। मदनलाल की गिरफ़्तारी के बाद कुछ ही घंटों के अन्दर उन्हें मैरीना होटल के कमरे में आशुतोष लाहिड़ी के उस बयान की एक कापी तो मिल ही गयी थी, जो उन्होंने एक दिन पहले जारी किया था। फ़ौरन इस नतीजे पर पहुंच जाने की बजाय कि इस बयान के वहाँ मिलने से यही साबित होता था कि हत्या की इस साज़िश में महासभा का हाथ था, अगर उन्होंने उस आदमी से, जिसका वह बयान था, उसके बारे में सफ़ाई माँगी होती तो वह कम-से-कम इतना तो बता ही देता कि मदनलाल ने जिस सम्पादक का ज़िक्र किया था, वह हिन्दू राष्ट्र का सम्पादक नाथूराम गोडसे ही था।

गांधी-हत्याकांड की जाँच दुबारा करने के लिए बहुत बाद में जस्टिस कपूर-कमीशन नियुक्त किया गया। कपूर-कमीशन ने कहा है कि 'छानबीन बहुत उच्चकोटि की नहीं थी' और कि उससे 'ऐसा लगता है कि दिल्ली की पुलिस को बिलकुल लक़वा मार गया था।' जस्टिस कपूर ने इस बात की ओर ख़ासतौर पर

ध्यान आर्कषित किया कि 'हिन्दू महासभा भवन के बारे में कोई छानबीन नहीं की गयी, जहाँ साज़िश में हिस्सा लेने वाले ज़्यादातर लोग ठहरे थे... (और न ही) आशुतोष लाहिड़ी से, जो नाथूराम गोडसे को अच्छी तरह जानते थे और आप्टे को भी, पूछताछ की गयी।'

बाद में मालूम यह हुआ कि मदनलाल ने भी उन्हें कुछ ज़्यादा नहीं बतलाया था।

मामले की छानबीन करने वाले अफ़सरों की डायरियों में साफ़तौर पर लिखा है कि वह बेहद अड़ियल था, वह 'मुख्तलिफ़' और एक-दूसरे के विरोधी बयान देता था, और उसने 'अपने साथियों के बारे में कुछ भी नहीं बतलाया।' डायरी में यह भी लिखा है कि उसे 'इसके बारे में आगाह कर दिया गया है।' एक और डायरी में यह भी लिखा है कि 'सिविल लाइंस ले जाकर उसे ग़लत-बयानी करने की बजाय सब वाक़यात सच-सच बता देने की सलाह दी गयी,' जिससे मालूम होता है कि उसके बयान पर यक़ीन नहीं किया जा सकता था।

मदनलाल ने भी पुष्टि की है कि एक बार जब उसकी जान-में-जान आ गयी तो फिर उसने ज़्यादा कुछ नहीं बतलाया। लेकिन अपनी गिरफ़्तारी के दिन ही उसने पुलिस को बता दिया था कि उसके छः और साथी हैं और उसने उनका हुलिया भी बता दिया था, उस टैक्सी का ब्यौरा भी दे दिया था, जिस पर वे बिड़ला हाउस गये थे, उसने अपने एक साथी का नाम भी बता दिया था कि वह अहमदनगर का करकरा सेठ था और यह भी कि उसका एक और साथी मराठी अखबार 'हिन्दू राष्ट्र या अग्रणी का, जो बम्बई या पूना से प्रकाशित होता था, सम्पादक है।'

इक्कीस तारीख को तीसरे पहर, मदनलाल की गिरफ़्तारी के चौबीस घंटे के अन्दर, दिल्ली पुलिस के दो अफ़सर डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट जसवन्तसिंह और इंस्पेक्टर बालकिशन हवाई जहाज़ से बम्बई रवाना हो गये। उन्हें आदेश था कि वहाँ जाकर बम्बई-पुलिस के डिप्टी-कमिश्नर जे० डी० नागरवाला से मिलें और उन्हें सारी बातें बताकर पूना चले जायें और वहाँ सी० आई० डी० के असिस्टेंट डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल ऑफ़ पुलिस राव साहब गुर्टू से मिलें। उन्हें मामले की छानबीन में बम्बई की पुलिस को भी मदद देनी थी। बाद में उन्होंने बतलाया कि वे अपने साथ मदनलाल के बयान की एक नक़ल भी ले गये थे। उस ज़माने में उत्तर भारत में पुलिस के दस्तूर के मुताबिक़ यह बयान उर्दू में लिखा हुआ था, जिसे बम्बई की पुलिस का शायद ही कोई बड़ा अफ़सर पढ़ सकता हो।

बाईस जनवरी को बहुत सबेरे ये दोनों अफ़सर डिप्टी-कमिश्नर नागरवाला से मिलने गये और उनका कहना है कि उन्होंने उनको मदनलाल के बयान की एक नक़ल 'अँगरेज़ी में उसके खुलासे के साथ' दी और जो कुछ मालूम था ज़बानी भी उनको बता दिया, खासतौर पर यह बात कि मदनलाल ने ज़िक्र किया था कि उसका एक खास साथी हिन्दू राष्ट्र या अग्रणी का सम्पादक है। नागरवाला इस बात से इंकार करते हैं कि उन लोगों ने करकरे के अलावा और किसी का नाम भी बतलाया था।

'उन्होंने करकरे को गिरफ़्तार करने की दरख्वास्त की थी, जिसका नाम भी वह ठीक से नहीं जानते थे... उनके पास एक छोटे-से पुर्जे के अलावा कोई और काग़ज़ नहीं था, जिस पर उर्दू में कुछ लिखा था—उर्दू के एक या दो लफ़्ज़।'

बाद में इस बात पर बहुत बखेड़ा मचा कि दिल्ली की पुलिस ने बम्बई की

पुलिस को उस आदमी की खोज करने को कहा था या नहीं, जो हिन्दू राष्ट्र का सम्पादक था। अगर यह याद रखा जाये कि दिल्ली से पुलिस का कोई भी अफ़सर—या सच पूछिये तो कोई भी आदमी—बम्बई टेलीफ़ोन करके ही यह मालूम कर सकता था कि उस सम्पादक का नाम नाथूराम विनायक गोडसे है, तो सारा क़िस्सा बच्चों के खिलवाड़ जैसा लगता है। हर प्रान्त की सरकार के पास उसके इलाक़े में छपने वाले अख़बारों का पूरा ब्यौरा एक रजिस्टर में दर्ज रहता है, जिसमें उनके सम्पादकों और मालिकों के नाम भी रहते हैं।

अगर नागरवाला को यह जानकारी दी गयी होती तो शायद वह गांधीजी की हत्या होने से पहले ही नाथूराम को पकड़ लेने में कामयाब हो जाते, या कम-से-कम वह पूना के कुछ ऐसे पुलिस वालों को, जो नाथूराम को सूरत से पहचानते थे, बिड़ला हाउस की गारद में तो तैनात कर ही सकते थे। लेकिन इस सम्भावना की ओर इशारा कर देने के बाद यह बता देना भी ज़रूरी है कि उस वक़्त नागर-वाला पर भी बिलकुल बच्चों की कहानियों जैसी एक सनक सवार थी, और वह किसी ऐसी बात, राय या नतीजे पर कोई ख़ास ध्यान नहीं देते थे, जो उनकी इस सनक से मेल न खाता हो।

नागरवाला ने उस समय अपने साथ के एक पुलिस-अफ़सर को बतलाया था कि 'महात्मा गांधी का अपहरण करने के लिए साजिश की गयी थी, जिसके पीछे बहुत बड़ा संगठन था। उसमें 20 मुख्य षड्यन्त्रकारी थे और हर एक की मदद के लिए उसके साथ बीस-बीस आदमी थे और उनके पास काफ़ी बड़े पैमाने पर बन्दूकें, पिस्तौलें और दूसरे घातक हथियार थे।'

नागरवाला को अपनी इस अटकल के सही होने का इतना भरोसा था कि बाद में दिल्ली की पुलिस से मिली जानकारी, और मदनलाल का बयान पढ़ लेने के बावजूद भी वह अपनी बात पर अड़े रहे, और कहते रहे कि उनकी बात मान ली जाये। सच तो यह है कि उन्होंने तो बिलकुल खुलेतौर पर यहाँ तक कहा कि 'षड्यन्त्रकारियों के गिरोह ने दिल्ली की पुलिस को अपनी मुट्ठी में कर लिया है।' 30 जनवरी तक नागरवाला ने दिल्ली की पुलिस के प्रधान को दो पत्र लिखे, जिनमें 'अपहरण वाली अटकल पर ज़ोर दिया गया था।'

गांधीजी की हत्या हो जाने के बाद नागरवाला ने उस नक़्शे में रंग भरना बन्द किया, जो उन्होंने अपनी कल्पना से तैयार किया था।

इसके अलावा, एक और बात भी थी जिसे कोई आसानी से स्वीकार नहीं करेगा; बम्बई की पुलिस और दिल्ली की पुलिस में एक तरह का मुक़ाबला रहता था, जो सभी जगह सरकारी महकमों में होता है। बम्बई की पुलिस यह समझती थी कि उसके अपराधियों का पता लगाने में दिल्ली की पुलिस क्या खाकर उसकी मदद करेगी! इसीलिए अगले कुछ दिनों तक ऐसी कई मिसालें सामने आयीं जब एक जगह की पुलिस को अगर कोई बहुत बुनियादी महत्त्व का सबूत मिल जाता तो वह चुपचाप उसे दबाकर बैठ जाती। गांधीजी की हत्या के बाद दिल्ली में किसी को, जिसे दोनों जगह की पुलिस के अन्दर-ही-अन्दर चलने वाली इस काट का कुछ पता था, (ऐसा विश्वास किया जाता है कि वह भारत के उप-प्रधानमन्त्री सरदार पटेल थे) सूझा कि परिस्थिति को सुधारने के लिए सिर्फ़ एक आदमी, नागरवाला, को स्पेशल अफ़सर की हैसियत से पूरी छानबीन का काम सौंप दिया जाये और इस तरह उसके नीचे एक अलग पुलिस दल क़ायम कर दिया जाये, जो पूरी तरह न तो दिल्ली की पुलिस का हिस्सा हो, न बम्बई की पुलिस का, और यही किया गया।

इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि दिल्ली से भेजे गये पुलिस के दोनों अफ़सरों ने महसूस किया कि बम्बई में उनका खुले दिल से स्वागत नहीं किया गया। बाईस और तेईस तारीख को, वे कम-से-कम तीन बार नागरवाला से मिले, जिनका ओहदा उनसे बहुत ऊँचा था। नागरवाला ने उनसे बड़ी रुखाई से कहा कि वे लोग अपनी वर्दी पहनकर कहीं न आया-जाया करें और होटल का अपना कमरा भी छोड़ दें; क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि उन लोगों के बम्बई में मौजूद होने की बहुत चर्चा हो। उन्होंने उन लोगों को अपनी तरफ़ से कोई छानबीन करने से भी रोक दिया। ये दोनों अफ़सर बम्बई में रहते हुए अगर दिल्ली में अपने सदर दफ़्तर से सम्पर्क रखते तो उन्हें यह भी मालूम हो गया होता कि मैरीना होटल के धोबी ने 40 नम्बर कमरे वालों के धुलाई के कपड़े भी पुलिस के हवाले कर दिये थे और उनमें से तीन कपड़ों पर 'एन० वी० जी०' का साफ़ निशान बना हुआ था। यह सूचना, और मदनलाल के बयान में हिन्दू राष्ट्र के सम्पादक के ज़िक्र को लेकर वे नाथूराम की असलियत का पता लगाने की दिशा में एक क़दम और आगे बढ़ सकते थे। लेकिन दिल्ली पुलिस ने यह खबर बम्बई में अपने अफ़सरों को नहीं दी और नागरवाला को, जिनके पास इस सूचना का फ़ायदा उठाने के साधन थे, इसके बारे में कुछ भी मालूम नहीं हुआ। कपूर-कमीशन के अनुसार, 'इसका कोई संकेत नहीं मिलता कि उन कपड़ों पर 'एन० वी० जी०' का निशान पड़ा होने को कोई महत्त्व दिया गया या इसका कोई इस्तेमाल किया गया।'

लेकिन हुआ यह कि हत्या के बाद जब नाथूराम ने खुद आत्म-समर्पण करके पुलिस को अपना नाम बताया, तभी पुलिस को धोबी से मिले सुराग़ की ओर ध्यान देने का होश आया। जस्टिस कपूर की राय में 'हत्या हो जाने के बाद तक पुलिस यह नहीं मालूम कर सकी थी कि साज़िश किन लोगों ने की थी।'

23 जनवरी को तीसरे पहर दिल्ली के वे दोनों पुलिस-अफ़सर एक बार फिर नागरवाला के सामने पेश किये गये। याद रहे कि उन दोनों को पूना जाकर वहाँ सी० आई० डी० के असिस्टेंट डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल ऑफ़ पुलिस रावसाहब गुर्टू से मिलने का आदेश दिया गया था। वह फ़ौरन इस गुत्थी को सुलझा देते कि वह सम्पादक कौन आदमी था, और ये दोनों पूना जाने के लिए बिलकुल तैयार बैठे थे, लेकिन नागरवाला ने 'उन्हें साफ़-साफ़ शब्दों में आदेश दिया कि वे दिल्ली लौट जायें।'

उन लोगों ने उसी शाम की ट्रेन पकड़ी और चौबीस घंटे बाद दिल्ली पहुँच गये। स्टेशन से टैक्सी लेकर वे सीधे अपने हेडक्वार्टर गये और वहाँ बतलाया कि बम्बई में उन पर क्या बीती : वे न तो करकरे को गिरफ़्तार कराने में कामयाब हुए और न ही यह पता लगा पाये कि वह सम्पादक कौन था। उन्होंने अपने विभाग के बड़े अफ़सरों को यह भी बतलाया कि बम्बई में उनके साथ कैसा लापरवाही का सलूक किया गया। उन्होंने शिकायत की, 'हमें तो एक तरह से बिलकुल "नज़र क़ैद" में रखा गया।'

लेकिन अगली सुबह जब इन दोनों अफ़सरों की रिपोर्ट पुलिस के इंस्पेक्टर-जनरल और इन्टेलिजेंस ब्यूरो के डायरेक्टर टी० जी० संजेवी के पास पहुँची तो वह इन शिकायतों के बारे में बम्बई की पुलिस से कुछ कहने को तैयार नहीं थे। यह विश्वास किया जाता था कि साज़िश करने वाले बम्बई प्रान्त के थे, इसलिए उनका पता लगाने में बम्बई की पुलिस का भरपूर सहयोग प्राप्त करना बेहद ज़रूरी था। उन्होंने एक नया रास्ता आज़माने का फ़ैसला किया।

बम्बई की सी० आई० डी० के डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल यू० जी० राणा उन दिनों किसी काम से दिल्ली आये हुए थे। संजेवी ने राणा को बुलाकर उन्हें मदनलाल के पूरे बयान की एक नक़ल दे दी, साथ में अँगरेज़ी में उसका अनुवाद भी। राणा से उन्होंने कहा कि वह ये बयान लेकर खुद बम्बई की पुलिस के पास जायें और उसमें जिन लोगों का ज़िक्र किया गया है, उनका पता लगाने व उन्हें गिरफ़्तार करने के लिए कहें।

राणा को यह आदेश पच्चीस तारीख को दिया गया था, और वह बड़ी आसानी से शाम वाला हवाई जहाज़ पकड़ सकते थे, जो उन्हें रात को नौ बजे बम्बई पहुँचा देता। हवाई जहाज़ पर उन्हें सीट न मिलने का कोई सवाल ही नहीं था; क्योंकि हर हवाई जहाज़ पर कम-से-कम चार सीटें सरकारी अधिकारियों के लिए रोक रखी जाती हैं और ये सीटें दूसरे यात्रियों को तभी दी जाती हैं जब आखिरी वक़्त तक कोई सरकारी अफ़सर उन्हें माँगने न आये।

लेकिन राणा हवाई जहाज़ से नहीं गये। उन्होंने ट्रेन पकड़ी और सो भी बम्बई के लिए नहीं, बल्कि इलाहाबाद के लिए। दरअसल वह उसी दिशा में गये जिधर दिल्ली से भागने के बाद नाथूराम और आप्टे गये थे। बस राणा उससे थोड़ा-सा आगे निकल गये।

राणा ने बाद में बतलाया कि उन्हें डॉक्टर ने हवाई जहाज़ पर चलने से मना किया था और बम्बई की किसी ट्रेन में उन्हें जगह नहीं मिली थी। जो लोग उनसे जवाब तलब कर सकते थे, लगता है, उन्हें भी इस पर कोई ताज्जुब नहीं हुआ। कम-से-कम किसी ने राणा को उस बात के लिए आड़े हाथों नहीं लिया, जिसे जस्टिस कपूर ने उनकी चींटी की चाल कहा है।

लेकिन इसकी एक और भी वजह थी। राणा रिटायर होने वाले थे और वह दिल्ली सरकारी काम से आये थे। धर्मपरायण हिन्दू होने के नाते इसमें कोई अनोखी बात नहीं थी कि उन्होंने इलाहाबाद के इतना पास होने का फ़ायदा उठाकर यह सोचा कि वहाँ जाकर त्रिवेणी-स्नान कर आयें। राणा को इलाहाबाद में बस दो-तीन घंटे का वक़्त चाहिए था और दिल्ली की गाड़ी इलाहाबाद पहुँचने और बम्बई की गाड़ी इलाहाबाद से छूटने के बीच इतना वक़्त तो खींच-तानकर निकाला ही जा सकता था। पहले भी ऐसा होता आया है, और आगे भी होता रहेगा।

तो इस तरह राणा अपने रास्ते से लगभग तीन सौ मील अलग हटकर इलाहाबाद चले गये। वह बम्बई पहुँचे सत्ताईस तारीख को तीसरे पहर, यानी अगर वह हवाई जहाज़ में दिल्ली से सीधे चलते तो उसके पूरे दो दिन बाद और अगर ट्रेन से भी चलते तो उसके पूरा एक दिन बाद।

स्टेशन से वह सीधे नागरवाला से मिलने गये। सच तो यह है कि वह ठहरे ही नागरवाला के यहाँ थे। उन्होंने मदनलाल के बयान का पूरा ब्यौरा नागरवाला को बतलाया, जिसमें हिन्दू राष्ट्र के सम्पादक का नाम भी साज़िश करने वालों में शामिल था।

लेकिन नागरवाला पर अभी तक वही बेतुकी धुन सवार थी कि साज़िश गांधीजी की हत्या करने की नहीं, बल्कि उनका अपहरण करने की थी। उन्होंने न जाने कैसे अपने मेहमान को भी समझा दिया कि दिल्ली की पुलिस ग़लत रास्ते पर भटक रही है। उन्होंने और राणा ने संजेवी को टेलीफ़ोन किया। संजेवी को इस तथाकथित साज़िश की दिलेरी और उसमें शामिल लोगों की इतनी बड़ी संख्या

पर कितना ही आश्चर्य क्यों न हुआ हो, पर जस्टिस कपूर के अनुसार, 'उन्होंने न तो अपहरण की कहानी की कमज़ोरियाँ (बम्बई की पुलिस को) बतलायीं, न उसे सही मानने से इंकार किया और न उस पर उनकी कोई बहुत तीव्र प्रतिक्रिया ही हुई।'

संजेवी ने इतना जरूर किया कि नागरवाला से अगले दिन एक रिपोर्ट भेज देने को कह दिया। नागरवाला ने रिपोर्ट तीन दिन बाद भेजी और संजेवी को वह गांधीजी की हत्या के अगले दिन मिली। बहरहाल इस रिपोर्ट में 'हत्यारों के बारे में कोई सूचना नहीं दी गयी थी।'

नवाँ अध्याय

आप देखते नहीं कि मैं अपनी चिता पर लेटा हूँ ?

—महात्मा गांधी

पहली कोशिश नाकाम हो जाने के बाद, अपराधी पुलिस से कहीं ज्यादा अपनी व्यवहार-कुशलता का सबूत दे रहे थे।

गोपाल गोडसे, जिसकी छुट्टी अभी चल रही थी, रोज़ सुबह-शाम आप्टे के घर उसकी बीवी से मालूम करने जाता था कि उसने कोई खबर तो नहीं भेजी; और जब चौबीस तारीख़ को सवेरे ख़ुद उसके पास नाथूराम का यह सन्देशा आया कि वह और आप्टे बम्बई पहुँच गये हैं, तो उसने फ़ौरन जाकर आप्टे की बीवी को सूचना दी। उसने उसे यह भी अच्छी तरह समझा दिया कि जैसे ही उसके पति का कोई सन्देशा आये, वह उसे सूचना दे दे।

25 जनवरी को इतवार था। तीसरे पहर चम्पा आप्टे को एक तार मिला। तार बम्बई से 'व्यास' नाम के किसी आदमी ने भेजा था, और उसका सिर-पैर कुछ भी उसकी समझ में नहीं आया। उसने चुपचाप वह तार गोपाल के पास भिजवा दिया।

तार का सारा मतलब गोपाल की समझ में आ गया। वह समझ गया कि करकरे भी बम्बई पहुँच चुका है, लेकिन नाथूराम और आप्टे से सम्पर्क नहीं स्थापित कर सका है। अब यह गोपाल की ज़िम्मेदारी थी कि वह उन तीनों की मुलाक़ात कराये।

गोपाल भागा-भागा स्टेशन पर गया और पहली ट्रेन से बम्बई के लिए रवाना हो गया। उसे जाकर अगली सुबह तक लौट आना था; क्योंकि अपनी नौकरी पर जाना था। उसके पास इतना समय नहीं था कि पूना जाकर वह पिस्तौल ले आये, जो उसने अपने दोस्त गोडबोले के पास हिफ़ाज़त से रख दिया था। बडगे का पिस्तौल अभी तक उसके पास था। बडगे से उसकी मुलाक़ात तो हो चुकी थी, लेकिन बडगे ने नाथूराम और आप्टे के बारे में इतनी नफ़रत के साथ बात की कि गोपाल उखड़ गया और उसने वह पिस्तौल बडगे को वापस कर देने का इरादा बदल दिया। वह उसे अपने साथ बम्बई लेता गया।

इतवार को आप्टे और नाथूराम अपनी नयी योजना को पूरा करने की दिशा

में एक क़दम और आगे बढ़ने की स्थिति में थे। वे हिन्दू-धर्म के एक बहुत धनवान संरक्षक श्री परांजपे के घर गये, जो सिल्वर बैंक कम्पनी में साझेदार थे और उन लोगों ने उनसे अपने अखबार के लिए 'क़र्ज़' माँगा। परांजपे ने दस हज़ार रुपये देने का वादा किया, लेकिन यह रक़म उन लोगों को अगले दिन सोमवार की सुबह उनके दफ़्तर से लेनी थी। इस तरह ज़रूरत से बहुत ज़्यादा पैसों का बन्दोबस्त करके वे एयर-इंडिया के दफ़्तर में गये और दो दिन बाद मंगलवार के लिए सुबह के हवाई जहाज़ से दिल्ली के दो टिकट बुक कराये। बुकिंग-काउंटर पर आप्टे ने अपना नाम 'डी॰ नारायण राव' और नाथूराम का 'एन॰ विनायक राव' बतलाया; हालाँकि वे एलफ़िंस्टन एनेक्सी होटल में ठहरे हुए थे, लेकिन पता उन्होंने सी ग्रीन होटल का दिया।

गोपाल शाम को छः बजे के कुछ ही बाद ठाणा पहुँचा। उसने सबसे पहला काम यह किया कि नार्थकोट पुलिस अस्पताल में टेलीफ़ोन करके मिस साल्वी के नाम यह सन्देशा छोड़ा कि वह आप्टे को बता दें कि 'व्यास' पहुँच गया है। इसके बाद वह नवपाड़ा में जोशी के घर 'व्यास' (यानी करकरे) से मिलने गया।

गिरोह के दोनों मुखिया तीन घंटे बाद उनसे मिलने आये। योजना समझने में बहुत ज़्यादा समय नहीं लगा। नाथूराम ने उन्हें बतलाया कि वह एक भरोसे का पिस्तौल या रिवाल्वर हासिल करेगा और जितना हो सकेगा गांधी के उतना ही पास पहुँचकर उन्हें गोली मारेगा और फिर आत्म-समर्पण कर देगा।

करकरे का कहना है कि उसके इस बयान के बाद खामोशी छा गयी। वह और गोपाल दोनों आप्टे को घूरे जा रहे थे कि उसे क्या कहना है। आप्टे ने कुछ भी नहीं कहा। नेतृत्व उसके हाथ से निकल चुका था। करकरे ने जब आप्टे से पूछा कि वह क्या करने वाला है तो आप्टे ने उसे बतलाया : 'मैं भी दिल्ली जा रहा हूँ। मैं भी वहीं रहूँगा, नाथूराम के साथ।'

'फिर मैं भी चलूँगा,' करकरे ने एलान किया, 'मैं भी वहाँ रहना चाहता हूँ, चाहे इसका मतलब मौत ही क्यों न हो!'

और इस तरह सारा मामला कुछ ही मिनट में तय हो गया। गोपाल ने पिस्तौल निकालकर अपने भाई को दे दिया। यह इस बात का संकेत था कि वह उनके साथ नहीं जाना चाहता था। सच तो यह है कि थोड़ी ही देर बाद उसने जोशी को पुकारकर पूछा कि पूना की अगली गाड़ी कब जाती है। अभी बहुत समय था। जोशी के बेटे वसन्त के बयान के अनुसार जब वह लगभग दस बजे सोने गया उस वक़्त तक गोपाल गोडसे घर ही में था, लेकिन रात को किसी वक़्त वह चला गया।

जब हमला करने वालों की संख्या सात से घटकर तीन रह गयी। लेकिन उनके दिमाग़ में जो योजना थी, उसके लिए इतने लोगों की भी ज़रूरत नहीं थी। बात बस इतनी थी कि आप्टे और करकरे ने भी नाथूराम का साथ देने का फ़ैसला किया था, भले ही इसके लिए उन्हें अपना बलिदान देना पड़े।

यह बात कभी स्पष्ट नहीं हो सकी कि करकरे के दोस्त जोशी ने इस बात-का कितना हिस्सा सुना था। जैसा कि आगे चलकर पता चलेगा, करकरे और आप्टे गांधीजी की हत्या के बाद भी बार-बार जोशी के घर आते रहे और तब तो जोशी को ज़रूर मालूम हो गया होगा कि वे पुलिस से बच रहे थे। लेकिन जिस तरह मनोरमा साल्वी को यह सोचकर गवाही देने के लिए नहीं तलब किया गया कि वह पुलिस के काम की गवाही नहीं देगी, उसी तरह जोशी के बारे में भी

पुलिस ने फ़ैसला किया होगा कि उसकी करकरे और आप्टे से इतनी गहरी दोस्ती थी कि वह उन्हें फाँसी पर चढ़वाने के लिए पुलिस के पक्ष में गवाही नहीं देगा। उसे कभी तलब ही नहीं किया गया।

सोमवार, 26 जनवरी 1948। सुबह कुहरा छाया हुआ था और पहाड़ों-जैसी ठंडी हवा चल रही थी, जैसी बम्बई में शायद सिर्फ़ दस-बारह बार चलती है और इसी को वहाँ जाड़ा कहा जाता है। दरअसल वह ऐसा दिन था जब कोई गड़बड़ी हो ही नहीं सकती। आप्टे और नाथूराम ने फ़ैसला किया कि पुलिस से छिपे रहने की बजाय वे बाहर निकलकर कोई भरोसे का रिवाल्वर हासिल करने की कोशिश करें। वे जानते थे कि भूलेश्वर के मन्दिर में रहने वाले दोनों भाइयों के पास लाइसेंस वाले रिवाल्वर थे। उन दोनों भाइयों की इतनी पहुँच भी थी कि वे कहीं-न-कहीं से इस तरह का हथियार दिला सकते थे। और फिर बड़े भाई दादा महाराज ने तो एक बार आप्टे से वादा भी किया था कि उसने पूना में उन्हें जो पिस्तौल दिया था उसके बदले में कोई अच्छा-सा रिवाल्वर दिला देंगे।

उन दोनों ने बहुत जल्दी में नाश्ता करके टैक्सी ली और भूलेश्वर के मन्दिर पहुँच गये। पहले वे दादा महाराज से मिले, जिन्होंने बाद में अपनी गवाही में बतलाया :

> 26 जनवरी 1948 को आप्टे और गोडसे दोनों मेरे घर आये और मुझसे वह रिवाल्वर माँगा जो मैंने उन्हें देने का वादा किया था, या फिर उसके पैसे चुका देने को कहा। मैं इसे अपना नैतिक कर्तव्य समझता था कि या तो आप्टे का पिस्तौल वापस कर दूँ, या उसके बदले में उसे रिवाल्वर दे दूँ, या उसे पिस्तौल की क़ीमत चुका दूँ।...मुझे ऐसा लगा कि उन्हें पिस्तौल की क़ीमत पाने से ज़्यादा दिलचस्पी रिवाल्वर हासिल करने में थी।

उस समय उनके लिए पैसे का कोई महत्त्व नहीं था; वादा किया हुआ रिवाल्वर उनके लिए सब-कुछ था। लेकिन हुआ यह कि दादा महाराज ने उन्हें न तो काम का रिवाल्वर दिया और न आप्टे के पिस्तौल की क़ीमत ही चुकायी। वे दोनों उनके पास से उठकर मन्दिर के संगमरमर के फ़र्श का आँगन पार करके उस तरफ़ चले गये, जहाँ दीक्षितजी महाराज रहते थे। लेकिन छोटे भाई ने भी उन्हें मुँह नहीं लगाया।

सुबह का सारा वक़्त बर्बाद हो गया और हुआ बस यही कि अलग-अलग दो गवाह बन गये, जो सौगंध खाकर कह सकते थे कि 26 तारीख़ को नाथूराम और आप्टे बम्बई में थे और रिवाल्वर पाने के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। वे श्री परांजपे की पेढ़ी पर गये, जिन्होंने अपने वादे के अनुसार उनके लिए दस हज़ार रुपये तैयार रखे थे। रुपया पाकर अचानक उनका विश्वास बढ़ गया कि वे रिवाल्वर हासिल करने में भी कामयाब हो जायेंगे। इतना पैसा पास होने पर काम बहुत आसान था।

उन्होंने दस बजे रात को करकरे से मिलने का वादा किया था, इसलिए तीसरे पहर का सारा वक़्त उनके पास ख़ाली था। नाथूराम सिनेमा देखने चला गया और आप्टे अपने जीवन में आखिरी बार कुछ घंटे साथ बिताने के लिए

मनोरमा को अपने होटल के कमरे में ले आया। दोनों को डर यही था कि अब वे कभी नहीं मिल पायेंगे। मनोरमा ने बाद में कहा कि आप्टे ने उसे नहीं बतलाया था कि वह और नाथूराम क्या करने की योजना में लगे थे। लेकिन इस बात पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता—खासतौर पर इसलिए कि वह जानती थी कि वे दोनों दिल्ली जा रहे हैं और आप्टे ने पेशबंदी के लिए उससे दिल्ली एक तार भेजने को कहा था। जैसा कि मनोरमा ने बाद में स्वीकार किया : 'आप्टे ने मुझसे यह याद रखने को कहा कि अगर गोडसे को कुछ हो जाये तो मैं तार भेज दूँ कि 'गोडसे की पैरवी का इन्तज़ाम करने के लिए दिल्ली पहुँच रहा हूँ।'

यह तार दिल्ली में हिन्दू महासभा के दफ़्तर के नाम आप्टे की तरफ़ से भेजा जाना था। लेकिन मनोरमा का बयान है कि आप्टे ने उसे यह नहीं बतलाया कि नाथूराम ऐसा क्या करने वाला था कि पैरवी का इन्तज़ाम करने की ज़रूरत पड़े, और न यह बतलाया था कि जिस वक़्त नाथूराम वह काम कर रहा हो, उस वक़्त बम्बई में आप्टे की मौजूदगी का सबूत देना ज़रूरी क्यों है ?

रात का खाना जल्दी खाकर नाथूराम और आप्टे ट्रेन से ठाणे गये। करकरे उन्हें प्लेटफ़ार्म पर ही मिल गया और तीनों रेल की पटरियाँ पार करके माल-गोदाम के एक सुनसान हिस्से में बिजली की बत्ती के नीचे बैठ गये। नाथूराम ने करकरे को अपनी भावी योजनाओं के बारे में बतलाया। वह और आप्टे अगले दिन हवाई जहाज़ से दिल्ली जा रहे थे, जहाँ से वे सीधे ग्वालियर जाने वाले थे। नाथूराम वहाँ किसी को जानता था, जो यक़ीनन उन्हें कोई भरोसे का हथियार दिला देगा। उन्हें उम्मीद थी कि वे उन्तीस तारीख़ गुरुवार को सवेरे दिल्ली वापस आ जायेंगे। अगर करकरे सत्ताईस तारीख को रात की ट्रेन से बम्बई से चले तो अट्ठाईस तारीख़ को दिल्ली पहुँच जायेगा। उन्तीस तारीख़ को उसे पुरानी दिल्ली रेलवे-स्टेशन के फाटक के सामने क्वींस गार्डन के बीच में पत्थर के फ़ुहारे के पास उनका इन्तज़ार करना था।

'मैं गुरुवार को पूरे दिन वहीं इन्तज़ार करूँगा,' करकरे ने वादा किया।

करकरे के पैसे खत्म हो गये थे, इसलिए आप्टे ने उसे खर्चे के लिए 300 रु० दे दिये। इसके बाद वे टहलते हुए मुख्य प्लेटफ़ार्म पर गये और वहाँ चाय की दूकान पर बम्बई जाने वाली आखिरी लोकल ट्रेन आने तक बैठे रहे। करकरे उन दोनों को विदा करके जोशी के घर वापस चला गया।

अगली सुबह नाथूराम और आप्टे हवाई जहाज़ से दिल्ली चले गये।

उनकी इस दिल्ली-यात्रा के तीन हफ़्ते बाद उनकी एयर-होस्टेस मिस लोर्ना वुडब्रिज ने शपथ लेकर बयान दिया कि वे दोनों यात्री उसे अच्छी तरह याद थे, जिन्होंने अपने नाम 'डी० नारायण राव' और 'एन० विनायक राव' बताये थे। उसे यह भी याद था कि वे दोहरी सीट वाली आखिरी क़तार में बैठे थे, नाथूराम खिड़की के पास था और आप्टे खिड़की से दूर वाली सीट पर। उसने बतलाया कि उन दोनों में एक को—आप्टे को—याद रखने की खास वजह यह थी कि 'उसने आम लोगों के मुक़ाबले में ज़्यादा बार उससे कॉफ़ी और टाफ़ियाँ मँगायी थीं।' फ़रवरी 1948 के अन्त में बम्बई में शिनाख्ती परेड में मिस वुडब्रिज ने न सिर्फ़ इस यात्री को बल्कि उस आदमी को भी पहचान लिया था, जो उसकी बग़ल में बैठा था।

लोर्ना वुडब्रिज की कमाल की याददाश्त उतनी ही अनहोनी थी, जितनी मनोरमा साल्वी की कुछ न जानने की इच्छा। लेकिन उसकी वजह से दिल्ली में आप्टे की मौजूदगी छुपाने के लिए की गयी पेशबन्दी पर पानी फिर गया। अगर आप्टे और नाथूराम भूलेश्वर के मन्दिर में उन दोनों भाइयों से मिलने न गये होते और मिस वुडब्रिज ने उन्हें पहचान न लिया होता तो यह साबित करना मुश्किल होता कि नाथूराम के साथ आप्टे भी दिल्ली गया था और जिस वक़्त नाथूराम ने गांधीजी के गोली मारी थी, वह वहीं खड़ा था।

एयरपोर्ट से आप्टे और नाथूराम सीधे पुरानी दिल्ली रेलवे-स्टेशन गये, जहाँ उनके पास दिल्ली-बम्बई एक्सप्रेस पकड़ने के लिए काफ़ी वक़्त था। यह ट्रेन आधी रात से कुछ ही पहले ग्वालियर पहुँची। उस वक़्त पहले और दूसरे दर्जे के यात्रियों के बाहर निकलने के फाटक से बहुत थोड़े ही यात्री बाहर जा रहे थे। स्टेशन के बाहर खुले मैदान में चाँदनी छिटकी हुई थी; वहाँ खड़े दस-बारह ताँगे सवारियों का इन्तज़ार कर रहे थे। हर ताँगेवाला सर्दी से बचने के लिए कम्बल लपेटे, उपले और घास-फूस जलाकर आग ताप रहा था। वे दोनों ताँगेवालों की क़तार की तरफ़ बढ़े और पूछा कि क्या उनमें से कोई डॉ० परचुरे का घर जानता है! उनका घर सभी जानते थे। एक ताँगेवाला, ग़रीबा, एक रुपये में उन्हें वहाँ पहुँचाने को तैयार हो गया।

उनकी टोली का तीसरा सदस्य करकरे इस वक़्त बम्बई से दिल्ली जाने वाले फ्रंटियर मेल के एक ठसाठस भरे तीसरे दर्जे के डिब्बे में बैठा हुआ था। सुबह का सारा वक़्त उसने जोशी के घर बैठकर कुछ ख़त लिखने में ख़र्च किया था। तमाशबीन की तरह हत्या को देखने के अलावा उसकी कोई भूमिका नहीं थी—और यह भूमिका उसने अपने लिए ख़ुद चुनी थी। और गांधीजी को मौत के घाट उतारे जाते देखने का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए कोमल स्वभाव का यह दयालु और उदार आदमी जान-बूझकर अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हो गया था।

डॉ० दत्तात्रय सदाशिव परचुरे अपने बीवी-बच्चों और अपने कई भाइयों के बीवी-बच्चों के साथ लश्कर में स्टेशन रोड पर बहुत बड़ी पुश्तैनी हवेली में रहते थे। वह सैंतालीस साल के थे और उनकी डॉक्टरी तो कुछ ख़ास नहीं चलती थी, लेकिन ग्वालियर की राजनीति में वह सबसे विवादग्रस्त हस्ती समझे जाते थे। उनके गहरे दोस्त भी बहुत थे और कट्टर दुश्मन भी। गोल चेहरे पर बहुत मोटे शीशे के चश्मे के पीछे से घूरती हुई उनकी बड़ी-बड़ी काली आँखें बहुत धुँधली दिखायी देती थीं। मज़बूत चौड़े कंधों पर बिखरी हुई लटों के नीचे लम्बी-सी काली दाढ़ी—देखने में वह साधु भी लगते थे और पिशाच भी। वह अच्छे-से-अच्छे गुरुओं से ज़्यादा अच्छे गुरु लगते थे, फिर भी उनमें जितना क्रोध, जितना ज़हर और जितनी कट्टरता भरी हुई थी, उतनी कम ही लोगों में होगी। जासूसी उपन्यासों का बड़े-से-बड़ा लेखक उनके जैसे पात्र की कल्पना करके अपने को धन्य समझता।

ग्वालियर की राजनीति में परचुरे की स्थिति की पृष्ठभूमि के रूप में यह बता देना ज़रूरी है कि अँगरेज़ों के ज़माने में हैदराबाद और कश्मीर की तरह ग्वालियर भी बहुत बड़ी रियासत थी। सत्ता-हस्तान्तरण के बाद वहाँ काँग्रेस की सरकार नहीं बन पायी थी। अभी तक महाराजा का शासन था, जिन्होंने नेहरू-सरकार के साथ 'यथास्थिति बनाये रखने का समझौता' कर लिया था। काँग्रेस देसी रजवाड़ों को भारत में शामिल कर लेने के लिए बेहद उत्सुक थी और इसलिए

वह रियासतों में लोकतान्त्रिक आन्दोलन शुरू कराने और उन्हें सहारा देने की भरपूर कोशिश कर रही थी—कई राजाओं का विश्वास था कि यह उनके शासन की जड़ें खोखली करने की तरकीब थी। कांग्रेस अपनी पार्टी के शासन को ही लोकतान्त्रिक शासन मानती थी, इसलिए वह ग्वालियर रियासत में भी कांग्रेस की सरकार बनाना चाहती थी।

कांग्रेस के इस दावे का हिन्दू महासभा डटकर विरोध करती थी कि वह ग्वालियर में जनमत का प्रतिनिधित्व करती है। वहाँ कभी आम चुनाव तो हुए नहीं थे, इसलिए यह पता लगाने का कोई तरीक़ा नहीं था कि किसका दावा ज़्यादा सही है। लेकिन इस इलाक़े में राजनीति के विकास-क्रम को देखते हुए यही लगता था कि हिन्दू महासभा का यह महसूस करने के लिए ठोस आधार मौजूद है कि रियासत में वही बहुमत की पार्टी थी।

ग्वालियर में हिन्दू महासभा का पूरा संगठन डॉ० परचुरे ने ही बनाया था। वह उसके सेक्रेटरी भी थे और मुख्य संगठन-कर्त्ता भी। वह महासभा की ग्वालियर शाखा की 'हिन्दू राष्ट्र सेना' के 'डिक्टेटर' भी थे। ग्वालियर में इस सेना का वही स्थान था, जो सावरकर के उस दल का था, जिसमें नाथूराम और आप्टे इतने प्रमुख रूप से भाग ले चुके थे। सेना का दावा था कि उसमें तीन हज़ार आदमी हैं।

हिन्दू महासभा के काम के सिलसिले में परचुरे और नाथूराम पहले कई बार मिल चुके थे; और साल-भर पहले जब डॉ० परचुरे राजनीतिक व्याख्यान देने पूना गये थे, तो नाथूराम के साथ उन्होंने 'सेना' और 'दल' को एक में मिला देने के बारे में बातचीत भी की थी। बातचीत तो असफल रही थी, लेकिन एक-दूसरे से बातें करने पर पता चला कि जीवन के ध्येय के कई पहलुओं के बारे में दोनों की भावनाएँ एक-समान गहरी थीं। नाथूराम ने गांधीजी की हत्या करने के लिए उपयुक्त हथियार माँगने के उद्देश्य से उसके पास जाने का फ़ैसला किया था।

उस वक़्त एक ख़ास वजह से परचुरे कांग्रेस पार्टी से, और इसलिए उसकी महानतम विभूति महात्मा गांधी से, बेहद नाराज़ थे। परचुरे और उनके महासभा के साथियों ने ग्वालियर के महाराजा जियाजीराव सिंधिया को यह समझाने की बहुत कोशिश की थी कि रियासत में उन्हीं की पार्टी का बहुमत है, इसलिए जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में सत्ता सौंपने का वक़्त आये तो महासभा को ही सौंपी जाये। लगता है कि महाराजा भी इस दावे को ठीक समझते थे, लेकिन उनकी समझ में बैठ गया था कि दिल्ली की सरकार किसी ग़ैर-कांग्रेसी मन्त्रि-मंडल के हाथों में सत्ता सौंपा जाना बर्दाश्त नहीं करेगी। नतीजा यह हुआ कि 24 जनवरी को, यानी जिस दिन ग़रीबा ताँगेवाले ने नाथूराम और आप्टे को डॉ० परचुरे की ड्योढ़ी पर छोड़ा था, उससे चार ही दिन पहले, ग्वालियर रियासत में कांग्रेस मन्त्रिमंडल बन गया था।

परचुरे इस वजह से बेहद नाराज़ थे।

तीन सप्ताह बाद ग्वालियर के फ़र्स्ट-क्लास मजिस्ट्रेट श्री आर० बी० अटल के सामने परचुरे ने सारी बातें स्वीकार करते हुए एक बयान दिया, जिससे बाद में वह यह कहकर मुकर गये कि उन पर बेजा दबाव डालकर लिया गया था। इस बयान में परचुरे ने कहा था : 'मैं सोने के लिए लेटा ही था कि मेरे सबसे बड़े

बेटे नीलकान्त ने मेरे कमरे में आकर बतलाया कि नीचे कोई दो मेहमान आये हैं। मैंने अपने बेटे से दरवाज़ा खोलने को कहा...और फ़ौरन उतरकर नीचे आया... और देखा कि नाथूराम गोडसे और नारायण आप्टे खड़े हैं।'

परचुरे ने उनसे चाय पीने को कहा; आप्टे तो फ़ौरन तैयार हो गया, लेकिन नाथूराम ने, जो सिर्फ़ कॉफ़ी पीता था, इंकार कर दिया। जब परचुरे ने आश्चर्य प्रकट किया कि वे लोग 'पहले से कोई सूचना दिये बिना' उनके घर कैसे आ गये, तो नाथूराम ने सफाई दी कि उन लोगों ने 'एक बहुत भयानक काम' करने का फ़ैसला किया है—गांधीजी की हत्या करने का। फिर उसने रिवाल्वर निकालकर परचुरे को बतलाया कि वह ठीक से काम नहीं करता और उनसे 'ग्वालियर में कहीं से कोई बेहतर रिवाल्वर' दिला देने की कोशिश करने को कहा। परचुरे ने वादा किया कि वह सुबह देखेंगे कि क्या हो सकता है और यह मानकर कि वे दोनों उन्हीं के यहाँ मेहमान रहेंगे, ऊपर सोने चले गये।

अगली सुबह परचुरे ने अपने बेटे नीलकान्त और अपने 'अंगरक्षक' रूपा को भेजा कि जी० एस० दंडवते को बुला लायें और मेहमानों से यह कहकर कि वे उस पर पूरा भरोसा कर सकते हैं, वह पाटणकर बाज़ार में अपने दवाखाने चले गये। दोपहर को जब वह वापस आये तो दंडवते वहाँ मौजूद था और उनके दोनों मेहमान उसके लाये हुए एक 'देसी' रिवाल्वर का मुआइना कर रहे थे। परचुरे के घर में एक तरफ़ जो घिरा हुआ बाग़ था, उसमें इस हथियार से एक गोली चलाने के बाद नाथूराम और आप्टे ने उसे रद्द कर दिया।

उन दोनों ने सोचा था कि तीसरे पहर पंजाब मेल से दिल्ली वापस चले जायेंगे, लेकिन जब परचुरे ने कहा कि इतनी जल्दी दूसरे रिवाल्वर का 'इन्तज़ाम' करना मुमकिन नहीं होगा तो वे शाम तक रुक गये। उन्होंने अपने मेज़बान के साथ दोपहर का खाना खाया और उसके बाद 'सामयिक राजनीतिक घटनाओं पर बातें करते रहे।' परचुरे ने अपने बयान में आगे चलकर कहा था :

> शाम को दंडवते एक पिस्तौल और उसकी 10-12 गोलियाँ लेकर मेरे घर आया।...गोडसे और आप्टे ने उसका मुआइना करके उसे पसन्द कर लिया। दंडवते ने पिस्तौल की क़ीमत 500 रु० बतायी। आप्टे ने उसे 300 रु० फ़ौरन दे दिये और बाक़ी बाद में देने का वादा कर लिया।

वह 9 मिलीमीटर का ऑटोमेटिक बरैटा पिस्तौल था और बहुत अच्छा काम करता था। उसे देखकर किसी भी हत्यारे के मुँह में पानी आ जाता। सच तो यह है कि नाथूराम ने जिस ढंग से गांधीजी की हत्या करने की योजना बनायी थी उसके लिए इससे बेहतर हथियार मुश्किल से ही मिल सकता था।

यह बरैटा रिवाल्वर अपना ऐतिहासिक काम करने के लिए आधी दुनिया का सफ़र करके यहाँ तक पहुँचा था। वह 1934 में इटली में बनाया गया था और मुसोलिनी की फ़ौज का एक अफ़सर उसे लेकर अबीसीनिया गया था। जिस फ़ौज के सामने इटली की फ़ौजों ने आत्म-समर्पण किया था, उसका एक हिस्सा ग्वालियर की पैदल सेना का चौथा रेजिमेंट भी था; इसी रेजिमेंट के एक अफ़सर ने उस पिस्तौल को मुसोलिनी के उस अफ़सर से 'हथियाया था'। कहा जाता है कि वह अफ़सर था बैटेलियन का कमांडिंग अफ़सर लेफ़्टिनेंट-कर्नल वी० वी० जोशी। लेकिन उस बैटेलियन के भारत लौटने के बाद से उस पिस्तौल के न जाने

कितने मालिक बदल चुके थे। बहरहाल, ग्वालियर में कर्नल जोशी या किसी के पास भी पिस्तौल होना कोई जुर्म नहीं समझा जाता था, क्योंकि रियासत में हथियार रजिस्टर कराने का क़ानून तो था, लेकिन उसे कभी सख़्ती से लागू नहीं किया गया था और सिर्फ़ बन्दूक या पिस्तौल किसी के पास होना वहाँ ब्रिटिश भारत की तरह गम्भीर अपराध नहीं समझा जाता था। दंडवते ने, जिसने नाथूराम को यह पिस्तौल बेचा था, अपने बयान में कहा कि वह उसने जगदीश प्रसाद गोयल नाम के एक आदमी से ख़रीदा था और मुक़दमे की सुनवाई के दौरान गोयल ने स्वीकार किया कि उसने पिस्तौल दंडवते को बेचा था, लेकिन गोयल ने यह नहीं बतलाया कि उसे कैसे मिला था। यह मालूम हो जाने के बाद कि गांधीजी की हत्या उस बरैटा पिस्तौल से की गयी थी, कोई भी यह मानने को तैयार नहीं था कि वह कभी उसके पास भी रह चुका था; और हो सकता है कि गोयल उस आदमी का नाम बतलाने से इंकार करके, जिसने वह उसके हाथ बेचा था, उसे मुसीबत में फँसने से बचाने की कोशिश कर रहा था। बहरहाल, चूँकि नाथूराम ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था, इसलिए अब यह साबित करने का कोई ख़ास महत्त्व नहीं रह गया था कि दंडवते द्वारा पिस्तौल उसके हाथ बेचे जाने से पहले उसका मालिक कौन-कौन रह चुका था!

डॉ० परचुरे ने अपने उसी बयान में, जिसे बाद में उन्होंने वापस ले लिया, कहा था :

> 28 जनवरी की रात को साढ़े दस बजे दंडवते ताँगा लेकर आया और नाथूराम गोडसे और आप्टे उस पर बैठकर मेरे घर से स्टेशन चले गये।... मैं अपने कमरे में जाकर सो गया। दंडवते भी अपने घर चला गया। अगले दिन, यानी 29 जनवरी 1948 को, मैंने अपने सबसे बड़े भाई कृष्णराव परचुरे को बतलाया कि दो सज्जन दिल्ली में गांधीजी की हत्या करने की योजना बनाकर आये थे।

रात को ग्यारह बजे 'वे दोनों सज्जन' फिर स्टेशन पहुँच गये, जहाँ उपले के छोटे-छोटे अलावों के पास आज भी ताँगे खड़े हुए सवारियों की राह देख रहे थे और पूर्णमासी की चाँदनी में धुएँ के हलके-हलके बादल आसमान की तरफ़ उठ रहे थे। बम्बई-अमृतसर एक्सप्रेस आधे घंटे बाद आने वाला था। लेकिन आज यह ट्रेन लगभग तीन घंटे लेट थी, इसलिए वे दो बजे के बाद ग्वालियर से रवाना हो सके—उन्तीस तारीख़ की सुबह।

दसवाँ अध्याय

अनशन समाप्त करने के लिए गांधी की शर्तों में से हर एक...हिन्दुओं के खिलाफ़ है।

—नाथूराम गोडसे

आज़ादी के बाद से राजधानी में दफ़ा 144 लगी हुई थी। इसका मतलब था कि उस समय के उत्तेजना के वातावरण में सभी सार्वजनिक मीटिंगों पर पाबन्दी लगी हुई थी। लेकिन गांधीजी के अनशन के उस घटनामय सप्ताह में दिल्ली की पुलिस ने दफ़ा 144 पर उतनी सख़्ती से अमल नहीं किया था, क्योंकि नागरिकों के कितने ही दल सार्वजनिक बयान देकर साम्प्रदायिक सद्‌भावना के प्रति अपना उत्साह प्रदर्शित करने के लिए आगे आ रहे थे। उनकी मीटिंगों पर पुलिस पाबन्दी लगाती तो लोग समझते कि गांधी-विरोधी मुसलिम-विरोधी गुट के साथ उसकी साँठ-गाँठ है।

एक तरह की सार्वजनिक सभाएँ करने की इजाज़त दे दी गयी तो हिन्दू महासभा की दिल्ली शाखा ने अधिकारियों की इस ढील का फ़ायदा उठाकर अपनी मीटिंग करने की भी योजना बनायी, जिसमें वह जनता को बता देना चाहती थी कि उसने शान्ति की उस सात-सूत्री शपथ पर कभी हस्ताक्षर नहीं किये थे, जो गांधीजी का अनशन समाप्त कराने के लिए तैयार की गयी थी।

27 जनवरी को तीसरे पहर चार बजे ये लोग कनाट प्लेस के बीच वाले मैदान में पूरे दल-बल के साथ जमा हुए। और इससे पहले कि वहाँ ड्यूटी पर तैनात थोड़े-से पुलिस वाले समझ पाते कि यह उन मीटिंगों में से नहीं है, जो साम्प्रदायिक सद्‌भावना के लिए की जाती थीं, एक के बाद दूसरे वक्ता ने उठकर गांधीजी की निन्दा तो इसलिए की कि उन्होंने एक ऐसे देश को, जिसके साथ भारत का युद्ध हो रहा था, 55 करोड़ रुपया देने के लिए सरकार को मजबूर किया, और सरकार की निन्दा इसलिए की कि उसने गांधीजी की हर बात मान ली। एक वक्ता ने गांधीजी की तुलना हिटलर से की और यह भविष्य-वाणी की कि जो अंजाम हिटलर का हुआ वही उनका भी होगा। मीटिंग में एक प्रस्ताव पास करके शान्ति-शपथ को ठुकरा दिया गया और सरकार की निन्दा की गयी कि उसने बची हुई नक़द रक़म का एक हिस्सा पाकिस्तान को क्यों

दिया ? मीटिंग के अन्त में ज़ोरदार आवाज़ में नारे लगाये गये : 'हिन्दू एकता ज़िन्दावाद ! मुसलमानों को निकाल दो ! मदनलाल ज़िन्दावाद !'

मदनलाल ज़िन्दावाद ! यह तो घोर अनर्थ था। इस नारे को दोहराते हुए तो पंजाब से आये शरणार्थी भी एक बार झिझक गये होंगे।

सरकार तो बिलकुल चकरा गयी। दफ़ा 144 के लागू रहते ऐसी मीटिंग कैसे हो पायी ? कांग्रेस वाले गरजते रहे, अफ़सर तिलमिला उठे और यह सोचने लगे कि इसकी ज़िम्मेदारी किसके मत्थे मढ़ी जाये ? जवाब तलब किये गये, लोगों को डाँटा-फटकारा गया। प्रशासन की ओर से दबी ज़बान में यह बात स्वीकार की गयी कि कहीं कोई 'बहुत बड़ी चूक' हो गयी थी।

यह तो प्रशासन की चूक हो सकती है कि इस तरह की मीटिंग होने दी गयी, लेकिन दिल्ली की पुलिस अच्छी तरह जानती थी कि यह मीटिंग शहर की आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से की भावनाओं को प्रतिबिम्बित करती थी, और कौन जाने खुद पुलिस के कितने ही लोगों को उन भावनाओं से हमदर्दी नहीं थी ! सच तो यह है कि शान्ति-शपथ का असर मिटता जा रहा था। दिल्ली के लोगों ने अपने महात्मा की सलाह मानकर मुसलमानों की हत्या करना और उन्हें उनके घरों से खदेड़ना बन्द कर दिया था। वे सच्चे मन से यह उम्मीद कर रहे थे कि सीमा के उस पार भी इसी तरह अत्याचार बन्द हो जायेंगे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं।

गांधीजी के अनशन के बारे में माउंटबैटेन को उम्मीद थी कि उससे 'प्रभावित होकर पाकिस्तान भी यही रास्ता अपनायेगा,' लेकिन पाकिस्तान पर कोई असर नहीं हुआ। बल्कि इसके विपरीत, पाकिस्तान में साम्प्रदायिक मारकाट का एक नया उन्माद पैदा हो गया और भावलपुर, गुजरात, ओखा या दर्जनों दूसरी जगहों में हो रही घटनाओं की कुछ-न-कुछ खबरें छपती रहती थीं। इनको काट-छाँट-कर छापा जाता था, फिर भी पढ़कर सदमा पहुँचता था। लेकिन बाद में लोग इन घटनाओं के विवरण में जाने की बजाय सिर्फ़ यही बातें करने लगे कि कितने मारे गये, कितने घायल हुए और कितनी औरतों का अपहरण हुआ।

जिस घटना को 'पाराचिनार की दर्दनाक घटना' कहा जाता है, उसे जस्टिस कपूर ने अपनी रिपोर्ट में कुल तेईस शब्दों में निबटा दिया : '22 जनवरी की रात को पाराचिनार कैम्प पर क़बायलियों ने हमला किया। 130 ग़ैर-मुसलिम मारे गये, 30 घायल हुए और 50 का अपहरण हुआ।'

लेकिन जिनका 'अपहरण' हुआ था, उनकी दुर्दशा बयान करने में जस्टिस कपूर न्यायाधीशों जैसी निर्मम, नीरस भाषा तक सीमित न रह सके :

> नौजवान औरतों का अपहरण और उनके साथ किया गया बर्ताव मानव-सम्बन्धों के इतिहास में एक शर्मनाक अध्याय था। उन्हें ले जाया गया, उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया, बलात्कार किया गया, उन्हें एक के बाद दूसरे के हवाले कर दिया गया, उनकी अदला-बदली की गयी, उन्हें मवेशियों की तरह बेचा गया और बाद में जिन्हें छुड़ाया गया उन्होंने जो विवरण दिया उसके बारे में अगर बहुत सख्त शब्दों का प्रयोग न भी किया जाये तो भी कहना पड़ेगा कि यह रोंगटे खड़े कर देने वाला विवरण था।

जिस चीज़ को सुप्रीम कोर्ट के एक जज ने, जिसे मानव-जाति के उत्कट उद्गारों को देवताओं जैसी निस्पृहता से देखना सिखाया जाता है, 'रोंगटे खड़े कर देने वाला' समझा, वह बहुत-से हिन्दुओं और सिखों को क्रोध से अंधा बना देने के लिए काफ़ी थी। उनके लिए शान्ति की शपथ की चपेट में एक सप्ताह बिताना प्रायश्चित के दंड के समान था। उनके भाइयों को पाकिस्तान से खदेड़ा जा रहा था; उनके पास रहने को घर नहीं थे; दिल्ली के मुसलमानों के पास उनके अपने घर थे। इलाज बहुत सीधा था : 'मुसलमानों को निकाल दो!'

गांधीजी के लिए पाराचिनार की दर्दनाक घटना एक चुनौती थी, 'उनकी आस्था की परीक्षा' थी। लेकिन वह उन्हें उनके तात्कालिक लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकी, जो यह था कि भारत की राजधानी को उसके मुसलमानों के लिए सुरक्षित बना दिया जाये। 25 जनवरी को उन्होंने अपनी प्रार्थना-सभा में श्रोताओं को बतलाया कि 'जब उनके हिन्दू और मुसलिम दोस्त आकर बताते हैं कि दिलों में फिर मिलाप हो रहा है तो उनका जी कितना खुश होता है।'

और फिर उन्होंने अपने श्रोताओं से कहा कि कितना अच्छा है कि महरौली का सालाना उर्स अगले दिन से शुरू होने वाला है।

इस शाही शहर को दूध पहुँचाने वाले ग्वाले युग-युगान्तर से महरौली गाँव में रहते आये थे। यह गाँव पालम हवाई अड्डे के पास है और हवाई जहाज़ के यात्रियों को ऊपर से चींटियों के बिल जैसा दिखायी देता है, जिसके मकान उपलों के ढेरों जैसे हैं।

महरौली में साल में एक बार चहल-पहल होती है जब वहाँ सन्त सूफ़ी क़ुतुबुद्दीन के मजार के सम्मान में उर्स होता है, जो इसी गाँव में रहते थे और यहीं मरे। जब दिल्ली में और उसके आस-पास साम्प्रदायिक दंगों की वह लहर आयी जिसकी वजह से गांधीजी को अनशन करना पड़ा, तो हिन्दुओं और सिखों की भीड़ ने महरौली को भी तहस-नहस कर दिया। उन्होंने वहाँ रहने वाले मुसलमानों को मार भगाया और क़ुतुबुद्दीन की दरगाह की जालियाँ और बत्तियाँ तोड़ दीं। जब हिंसा की लहर उतरी तो बहुत-से मुसलिम परिवारों को, जो महरौली छोड़कर भाग गये थे, समझा-बुझाकर राज़ी किया गया कि वापस जाकर अपने-अपने घरों में रहें। लेकिन जो लोग इस तरह वापस आ गये, उनके दिलों में भी इतनी दहशत समायी हुई थी कि उर्स मनाने का खयाल भी, जो उस साल 26 जनवरी को शुरू होने वाला था, छोड़ चुके थे।

गांधीजी उनके हक़ के लिए लड़ने मैदान में उतरे। दिल्ली के हिन्दुओं और सिखों के सामने उन्होंने अपना अनशन समाप्त करने के लिए एक शर्त यह भी रखी कि वे महरौली के मुसलमानों को अपना सालाना उर्स मनाने दें।

इस तरह यह उर्स सात-सूत्री शपथ की एक खास शर्त थी। उस पर हस्ताक्षर करने वालों ने गांधीजी को आश्वासन दिया था कि 'ख्वाजा क़ुतुबुद्दीन के मज़ार का उर्स हर साल की तरह इस साल भी होगा।'

गांधीजी के लिए यह उर्स एक प्रतीक बन गया था। यही कि उर्स मनाया जा सकेगा—उनके लिए लोगों का हृदय-परिवर्तन शुरू होने का, जिसकी वह कोशिश करते आये थे, सबूत था। और इसलिए बिलकुल उचित ही था कि 27 जनवरी को जब वह उर्स में गये तो मुल्ला लोग उन्हें दरगाह में इस तरह ले गये मानो वह उन्हीं में से एक हों। गांधीजी ने उन्हें बतलाया कि 'दरगाह की संगमरमर की

जालियों को जिस बेरहमी से तवाह किया गया था, उसे देखकर उन्हें कितनी तकलीफ़ हुई है।'

गांधीजी को सन्त, दुष्ट, राजनीतिज्ञ, राजनेता, मूर्ख, नादान, मक्कार, चालाक बनिया, नंगा फ़क़ीर और न जाने क्या-क्या कहा जा चुका था, लेकिन इस समय उन्होंने महरौली की दरगाह के मुल्लाओं के अनुरोध पर जो थोड़े-से शब्द कहे, वे यह साबित करने के लिए काफ़ी थे कि वह कुछ और रहे हों या न रहे हों, वह सच्चे मानों में एक सभ्य इंसान ज़रूर थे। उन्होंने कहा :

> मैंने कभी जाना ही नहीं कि आदमी साम्प्रदायिक कैसे होता है। वचपन से मेरा सपना रहा है कि हमारे इस विशाल देश में सभी तरह के और सभी सम्प्रदायों के जो लोग बसे हुए हैं, उन्हें एकता के सूत्र में बाँधा जाये, और जब तक यह सपना पूरा नहीं होगा तब तक मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी।

अमृतसर एक्सप्रेस पुरानी दिल्ली के स्टेशन पर दोपहर से कुछ पहले पहुँचा। नाथूराम टिकट की खिड़की पर गया और वहाँ अपना दूसरे दर्जे का टिकट दिखाकर उसने दो पलंगों वाला रिटायरिंग-रूम बुक करने को कहा। उस वक़्त ड्यूटी वाले क्लर्क का नाम था सुन्दरीलाल; उसने बताया कि कमरा एक घंटे में खाली होने वाला है। उन्होंने एक घंटे का वक़्त स्टेशन पर ही काट दिया और एक बजे के बाद 6 नम्बर के कमरे में चले गये। नाथूराम ने वहाँ अपना नाम 'एन० विनायक राव' लिखवाया।

नाथूराम और आप्टे पिछले तीन दिन से भाग-दौड़ करते-करते बहुत थक गये थे। उन्होंने यह समय बहुत तनाव के बीच काटा था। दोनों ने नहा-धोकर कपड़े बदले, फिर पालिश वाले को बुलवाकर अपने जूतों पर पालिश करायी और अपने मैले कपड़े धुलवाने का इन्तज़ाम किया। इसके बाद उन्होंने स्टेशन के रेस्तराँ में जाकर पेट भरकर खाना खाया और कमरे में जाकर सो गये।

इसी बीच उनकी टोली का तीसरा आदमी करकरे वहाँ से मुश्किल से दो सौ गज़ की दूरी पर सड़क के पार पार्क में तमाम वक़्त उनका इन्तज़ार करता रहा।

करकरे पिछली शाम को दिल्ली पहुँचा था और वह भी स्टेशन पर ही ठहरा हुआ था, लेकिन रिटायरिंग-रूम में नहीं। वह प्लेटफ़ार्म पर ही अपना कम्बल बिछाकर उन सैकड़ों शरणार्थियों के बीच सो गया था, जो उस वक़्त तक कि कोई आकर उन्हें वहाँ से भगा न दे, रेलवे स्टेशन को ही अपना घर समझते थे। सुबह वह एक सार्वजनिक शौचालय के सामने लगी लाइन में खड़ा हो गया था, प्लेटफ़ार्म के नल पर ही उसने मुँह-हाथ धोए थे और चाय की दूकान पर नाश्ता किया था। फिर एक शरणार्थी को, जिससे उसकी दोस्ती हो गयी थी, अपने बिस्तरबन्द की रखवाली सौंपकर वह उन लोगों की राह देखने के लिए सड़क के पार पार्क में चला गया था।

सुबह से ही बादल छाये हुए थे; बड़ी ठिठुरन थी। करकरे फुहारे की मुँडेर पर बैठा सिगरेट पर सिगरेट फूंक रहा था और सर्दी के मारे काँप रहा था। एक-दो घंटे इसी तरह बैठे रहने के बाद वह उठकर पार्क में इधर-उधर टहलने लगा; थोड़े-थोड़े समय के बाद वह पार्क के फाटक की ओर नज़र डाल लेता। वह

वहाँ अकेला नहीं था; क्योंकि बहुत-से शरणार्थियों ने स्टेशन पर जगह न होने की वजह से क्वींस गार्डन के बड़े-बड़े पेड़ों के नीचे डेरा डाल लिया था। इसकी वजह से वह पार्क बंजारों के पड़ाव-जैसा लगने लगा था।

पार्क में टहलते हुए करकरे एक आदमी के पास से होकर गुज़रा, जो मिट्टी के तेल का स्टोव जलाकर चाय बना रहा था। उसने एक बोरे में से चीनी के कुछ प्याले और तश्तरियाँ निकालकर वहीं धूल में सजा दीं। जब करकरे चक्कर काटकर फिर उधर आया तो उसने देखा कि उस पार्क में रहने वाले चार-पाँच औरत-मर्द उसके चारों ओर बैठे चाय पी रहे हैं। करकरे ठिठककर खड़ा हो गया और उसने उस आदमी से पूछा कि क्या वह चाय बेचता है?

'हाँ, बाबूजी, अभी तो दूकान लगायी है,' उसने अपने सामने सजी हुई प्यालियों और तश्तरियों की तरफ़ हाथ से इशारा करते हुए कहा।

'दूकान?' करकरे अनायास यह सवाल पूछ बैठा।

'पेट पालने के लिए इससे ज़्यादा और चाहिए भी क्या?' उस आदमी ने जवाब दिया, 'किसी और का पेट तो पालना नहीं है मुझे। दो बेटे थे, सो मेरी आँखों के सामने मार डाले गये, घरवाली को भी लाठियों से पीट-पीटकर मौत के घाट उतार दिया गया।'

करकरे को कुछ करना तो था नहीं। दूसरे गाहकों के चले जाने के बाद वह वहीं ज़मीन पर बैठ गया और दूसरी प्याली के पैसे देकर चाय का इन्तज़ार करने लगा। वह आदमी अपना दुखड़ा रो रहा था और वह जो कुछ कह रहा था उससे करकरे का यह विश्वास और पक्का हो गया कि वे जो करने जा रहे थे, वह सिखों और हिन्दुओं पर किये गये हर अन्याय और अत्याचार का जवाब होगा।

शरणार्थियों वाली वही पुरानी कहानी थी, बस थोड़ा-बहुत हेर-फेर था, जिसे उसने बिना किसी कटुता या क्रोध के बिलकुल विरक्त भाव से बयान कर दिया था। घर से मार भगाये गये...सिपाहियों ने बचाया...भारत की ओर चल पड़े ...दिन-भर न खाना, न पानी, उसके बाद बस एक रूखा-सूखा बिस्कुट...कुछ डबल रोटियाँ ले जाते हुए आदमी पर हज़ारों लोगों का भूखे भेड़ियों की तरह टूट पड़ना...अन्त में दिल्ली पहुँचकर नरक से छुटकारा। दिल्ली में उसे कमर टिकाने को जगह तो मिल गयी थी...बस इतनी जगह कि वह थोड़ी देर को पाँव फैलाकर लेट सके।

'मैंने पहले वहाँ पर चाय की दूकान लगायी थी; फिर वहाँ से मुझे खदेड़ दिया गया।' उसका संयम टूट चुका था। उसने एक मोटी-सी गाली दी और पहली बार घृणा और क्रोध का संकेत दिया।

'खदेड़ दिया?'

'जी हाँ, हमारे अपने सिपाहियों ने, संगीनों के ज़ोर पर, और हमारे महात्माजी ने इसलिए अनशन कर दिया कि मैंने एक मुसलमान के घर पर क़ब्ज़ा कर लिया था। हुँह! उन्होंने मुझे उठाकर बाहर फेंक दिया।'

करकरे उसकी दूकान चलने की कामना व्यक्त करता हुआ उठ खड़ा हुआ और बोला, 'जानते हो, मैंने भी जब कारोबार शुरू किया था तब मेरे पास भी तुमसे ज़्यादा सामान नहीं था। हाँ, मैंने भी चाय की दूकान लगायी थी। मेरा कारोबार चल निकला और मैंने बहुत पैसा कमाया।'

'बाबूजी, मुझे पैसा कमाने का कोई अरमान नहीं है—बस किसी तरह दिन काटने हैं।'

करकरे फिर फ़ुहारे के पास चला गया। अब उसकी मुंडेर का पत्थर धूप से कुछ गरम हो गया था। वह बैठकर सिगरेट पीने लगा। पाँच बजे के कुछ ही बाद सूरज डूबने लगा और ठंडी हवा चलने लगी। शरणार्थियों ने रात का खाना पकाने के लिए उपले सुलगा लिये थे। इतने में धुएँ के पार उसे वे दोनों आते दिखायी दिये। उसे राह देखते सात घंटे से ज़्यादा हो चुके थे।

नाथूराम और आप्टे जिस तरह चल रहे थे, उससे वह समझ गया कि उन्हें रिवाल्वर मिल गया है। 'चलो!' नाथूराम ने कहा, 'आओ!' और तीनों पुरानी दिल्ली-स्टेशन की तरफ़ चल दिये।

करकरे उन दोनों के पीछे-पीछे रिटायरिंग-रूम में गया और आप्टे ने दरवाज़ा बन्द करके चिटकनी चढ़ा दी। नाथूराम ने अपने लोहे के सन्दूक में से ढूँढ़कर कुछ निकाला और करकरे से बोला, 'यह देखो!'

उसके हाथ में नीलाई लिये हुए काले रंग का रिवाल्वर चमक रहा था। ऐसा हथियार करकरे ने पहले कभी नहीं देखा था। उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। 'लेकिन इसमें फिरकी तो है ही नहीं,' वह बोला।

'नहीं, यह ऑटोमेटिक है। बस घोड़ा दबाते जाओ और गोलियाँ चलती रहेंगी।'

'और गोलियाँ?'

इसके जवाब में नाथूराम ने रूमाल में लिपटी हुई एक पोटली निकाली।

जैसे किसी टीम ने बहुत बड़ा कप जीत लिया हो, वह बरेटा पिस्तौल एक हाथ से दूसरे हाथ में घूमता रहा। अन्त में नाथूराम ने उसे फिर सन्दूक में रखते हुए कहा, 'कल सवेरे इसे चलाकर देखेंगे।'

इसके बाद वे पैदल टहलते हुए चाँदनी चौक गये। उनकी हर चेतना बहुत तीव्र हो उठी थी। वे हर चीज़ को इस तरह देखते, हर आवाज़ को इस तरह सुनते, हर खुशबू को इस तरह सूँघते जैसे कोई सैलानी किसी अजनबी शहर में आ गया हो; और घुमक्कड़ सैलानियों की तरह वे सड़क के किनारे एक सस्ते-से फ़ोटोग्राफ़र की दूकान पर रुक गये और नाथूराम ने वहाँ अपना फ़ोटो खिंचवाया। फ़ोटोग्राफ़र ने घंटे-भर में तीन कापियाँ दे देने का वादा किया। उन्होंने इतनी देर में पास ही एक शाकाहारी होटल में खाना खाया और फिर एक-दूसरे से अलग हो गये। करकरे और आप्टे सिनेमा देखने चले गये, नाथूराम अपना फ़ोटो लेने चला गया।

करकरे को उस फ़िल्म के बारे में बस इतना याद था कि वह हिन्दी की फ़िल्म थी और रवीन्द्रनाथ टैगोर की किसी कहानी पर बनायी गयी थी; और यह कि फ़िल्म बहुत लम्बी थी; क्योंकि जब वह ख़त्म हुई उस वक़्त आधी रात बीत चुकी थी। जब वे स्टेशन की तरफ़ लौटे तो क्वींस रोड पर आवा-जाही बिलकुल बन्द हो गयी थी। स्टेशन के फाटक पर आप्टे अचानक ठिठककर खड़ा हो गया और करकरे से बोला कि वह ऊपर कमरे में नहीं जायेगा। 'शायद वह सो रहा होगा और अगर मेरी वजह से आज़ाद आदमी की हैसियत से उसकी आखिरी रात की नींद टूट गयी तो मैं अपने को कभी माफ़ नहीं कर सकूँगा।'

करकरे ने देखा कि आप्टे फिर चाँदनी चौक की तरफ़ लौट गया। करकरे को यह कभी मालूम न हो सका कि उसने रात कहाँ बितायी। वह खुद जाकर प्लेटफ़ार्म पर शरणार्थियों के बीच सो गया था। सुबह जब वह रिटायरिंग-रूम

में गया तो आप्टे वहाँ पहले से मौजूद था। करकरे को यह जानकर बहुत खुशी हुई कि नाथूराम रात-भर सुख की नींद सोया था।

वे तीनों नाश्ता करने पहली मंज़िल पर शाकाहारी रेस्तराँ में गये। वे ऑर्डर देने ही जा रहे थे कि वेटर ने नाथूराम और आप्टे को बड़े तपाक से सलाम किया और बड़े दोस्ताना ढंग से मुसकराकर मराठी में बोला, 'साहब, आप लोग घर छोड़कर इतनी दूर कहाँ आ गये ?'

वे बौखलाकर उसे घूरने लगे। फिर नाथूराम बोला, 'तुम भी तो घर से बहुत दूर आ गये हो। पिछली बार मैंने तुम्हें पूना स्टेशन के रेस्तराँ में देखा था।'

'जी हाँ, मैं वहाँ कितनी बार आप दोनों की सेवा कर चुका हूँ। अभी कुछ ही दिन पहले मुझे यहाँ भेज दिया गया है।'

उस ज़माने में स्टेशनों के पश्चिमी ढंग के रेस्तराँ चलाने का ठेका ब्रैंडन एंड कम्पनी को दे दिया जाता था और वेटरों की बदली लगातार एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन को होती ही रहती थी। लेकिन इस तरह पहचाना जाना बहुत परेशानी की बात थी, और सो भी आज के दिन।

वेटर उनका ऑर्डर लेकर चला गया। मक्खन-टोस्ट, चाय और कॉफ़ी। उसके चले जाने के बाद नाथूराम अपनी कलाइयाँ इस तरह जोड़कर चुपचाप बैठ गया मानो उनमें हथकड़ियाँ पड़ी हों, और फिर इस संयोग पर अपना सिर हिलाने लगा। नाश्ता करके वे फिर अपने कमरे में गये और अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

करकरे ने बाद में इस लेखक को बतलाया, 'नाथूराम ने कुछ चिट्ठियाँ लिखीं और हम उसे चुपचाप बैठे देखते रहे। हम उस समय भी महसूस कर रहे थे जैसे हम उससे अलग हो चुके हों और इस बात पर लज्जित थे कि हम उसके लिए ज़्यादा कुछ नहीं कर सकते। हम बस इतना ही कर सकते थे कि आखिर तक उसके साथ रहकर उसे यह जताते रहें कि वह अकेला नहीं है, मैं और आप्टे उसके साथ हैं।'

नाथूराम ने तीन चिट्ठियाँ लिखीं। उसे उम्मीद थी कि मनोरमा साल्वी से बम्बई से जो तार भेजने को कहा गया था और उसने जो ये चिट्ठियाँ लिखी थीं, उनसे आप्टे और करकरे को इस का काफ़ी सबूत मिल जायेगा कि उस दिन वे दिल्ली में नहीं थे और 20 जनवरी को जो कुछ हुआ था, उसके बारे में वे कह सकेंगे कि 'वे शान्तिपूर्ण प्रदर्शन करने आये थे, जिसमें एक दोस्त की नासमझी की हरकत से गड़बड़ी पैदा हो गयी थी।'

उन चिट्ठियों पर उसी दिन की तारीख़ पड़ी थी—शुक्रवार, 30 जनवरी। उनमें से दो आप्टे को पूना में उसके घर और दफ़्तर के पतों पर लिखी गयी थीं और तीसरी अहमदनगर के पते पर करकरे के नाम थी। ये चिट्ठियाँ मराठी में थीं और तीनों का मज़मून एक ही था। उनमें लिखा गया था कि नाथूराम ने जो कुछ किया उससे उन्हें आघात ज़रूर पहुँचेगा; लेकिन वह यह करने पर इसलिए मजबूर हो गया था कि उसने दिल्ली में प्रदर्शन करके विरोध प्रकट करना बेकार समझा। इसके बाद उसने लिखा था :

> मेरे दिमाग़ में एक आग-सी धधक रही है; क्योंकि मुझे राजनीतिक बेइंसाफ़ियों का कोई हल दिखायी नहीं देता। इसलिए मैंने अपनी तरफ़ से

एक ऐसा आखिरी और बेहद खतरनाक क़दम उठाने का फ़ैसला किया है, जिसकी खबर तुम्हें एक-दो दिन में मिल जायेगी। मुझे पूरा यक़ीन हो गया है कि पंचगनी या दिल्ली में हमने जिस तरह के शान्तिपूर्ण प्रदर्शन किये थे, उनसे मौजूदा हालत में कोई फ़ायदा नहीं हो सकता इसलिए मैंने किसी और पर भरोसा किये बिना वही करने का फ़ैसला किया है जो मैं करना चाहता हूँ। इस चिट्ठी के साथ जो फ़ोटो है, उसे संभालकर रखना।

हर चिट्ठी के साथ नाथूराम का एक-एक फ़ोटो था जो उसने पिछली रात खिंचवाया था।

उसके बाद वे इस बात पर सोच-विचार करते रहे कि नाथूराम के लिए गांधीजी के इतने नजदीक तक पहुँच जाने का सबसे अच्छा तरीक़ा क्या होगा कि वह उन्हें अपने पिस्तौल का निशाना बना सके। उन्होंने यह सुन रखा था कि बिड़ला हाउस पर तैनात गारद में सिपाही दुगने कर दिये गये हैं और प्रार्थना-सभा में चौकसी के लिए कुछ सिपाही सादे लिबास में भी तैनात कर दिये गये हैं। दिल्ली और बम्बई दोनों जगहों के बड़े-बड़े पुलिस-अफ़सरों के मुक़ाबले ज़्यादा आगे की बात सोचकर उन्हें यह डर हुआ कि सादे लिबास वाले इन सिपाहियों में से शायद कुछ पूना के भी हों, जो उन्हें शक्ल से पहचानते हों।

इस पर आप्टे ने एक सुझाव रखा, जिसकी चर्चा करना इसलिए जरूरी है कि उससे पता चलता है कि उसका दिमाग़ कितना बचकाना था। उसने कहा कि नाथूराम को पुराने ढंग का फ़ोटोग्राफ़र बनकर एक बड़ा-सा कैमरा और तीन टाँग वाला स्टैंड लेकर वहाँ जाना चाहिए और उसे गांधीजी के सामने लगाकर अपने सिर और कैमरे को काले कपड़े से ढक लेना चाहिए।

जब नाथूराम ने यह सुझाव नहीं माना तो उसने एक और सुझाव रखा जो इतना ही बेतुका था। 'बुरक़े के बारे में क्या खयाल है ? कई औरतें प्रार्थना-सभा में बुरक़ा पहनकर जाती हैं।'

'और उन औरतों को सबसे आगे बैठने दिया जाता है,' करकरे ने अपनी तरफ़ से जोड़ा।

यह सच भी था कि जो औरतें प्रार्थना-सभा में आती थीं, वे गांधीजी के सबसे पास बैठती थीं, कोई आठ-दस फ़ुट की दूरी पर। इस तरह नाथूराम उनके इतना पास पहुँच सकता था कि उसका निशाना चूकने न पाये।

तीनों की राय हुई कि तरकीब बहुत अच्छी है, और आप्टे और करकरे फ़ौरन बुरक़ा ढूंढने निकल पड़े। उन्हें चाँदनी चौक में दो-तीन दूकानें मालूम थीं, जहाँ उन्हें बुरक़ा मिल जाने की उम्मीद थी। लेकिन ये दूकानदार हिन्दू थे और उन्हें पता भी नहीं था कि बुरक़े कहाँ मिलते हैं। लेकिन उन लोगों की निराशा देखकर एक दूकानदार ने आधे घंटे में कहीं से बुरक़ा मँगवा देने का वादा किया। 'कितनी बड़ी औरत के लिए चाहिए ?' उसने पूछा।

'बहुत लम्बी है,' करकरे ने उसे बतलाया, 'लेकिन बहुत मोटी नहीं है।'

आधे घंटे बाद वे फिर उस दूकान पर पहुँचे तो बुरक़ा वहाँ मौजूद था।

उन्हें पचास रुपये देने पड़े। वे बुरक़ा लेकर बहुत खुश-खुश रिटायरिंग-रूम में पहुँचे। नाथूराम ने बुरक़ा पहनकर देखा, और करकरे का कहना है कि वह बिलकुल लम्बी-तगड़ी मुसलमान औरत-जैसा लगता था। नाथूराम ने जब चलकर देखने की कोशिश की तो हर क़दम पर उसके पाँव बुरक़े में फँस जाते थे और

वह लड़खड़ाकर गिरने लगता था; वह अपने हाथ भी ठीक से नहीं हिला-डुला सकता था। उसने बुरक़ा उतारकर पलंग पर फेंक दिया। 'बेकार है,' उसने अपना फ़ैसला सुना दिया।

'मालूम है, हमें इसके कितने पैसे भरने पड़े हैं?' करकरे ने शिकायत के लहज़े में कहा।

'आज के दिन भी तुम्हें पैसे की फ़िक्र पड़ी है,' नाथूराम ने कहा।

भेस बदलने का सवाल अभी तक तय नहीं हो पाया था। टैक्सी लेकर वे बिड़ला-मन्दिर गये और वहाँ जाकर पीछे वाले जंगल में आधे मील अन्दर तक पैदल गये, लगभग ठीक उसी जगह जहाँ दस दिन पहले उनमें से कुछ लोगों ने निशाने-बाज़ी का अभ्यास किया था। करकरे के बयान के अनुसार :

> हमने एक पेड़ चुना, जो आदमी के धड़ जितना चौड़ा था। उस पर हमने सिर, सीने और पेट का संकेत देने के लिए दायरे खींच दिये। नाथूराम ने 20-25 फ़ुट दूर खड़े होकर गोली चलाना शुरू कर दिया। उसकी गोलियाँ उन दायरों के अन्दर लग रही थीं। इसके बाद उसने दूरी बदल-बदलकर गोलियाँ चलायीं, पन्द्रह फ़ुट से, फिर दस फ़ुट से, और आख़िर में पाँच फ़ुट से। उसे अपने बरैटा पिस्तौल की क्षमता पर पूरा सन्तोष हो गया। उसने पिस्तौल का खटका बन्द करके उसे जेब में रख लिया।

बिड़ला मन्दिर के पीछे वाले जंगल से वापस आते हुए नाथूराम ने उन दोनों को बताया कि उसने भेस बदलने का विचार छोड़ दिया है। इसकी बजाय उसने फ़ौजियों जैसी वर्दी पहनने का फ़ैसला किया है। रास्ते में उन्होंने एक दूकान से स्लेटी रंग की फ़ौजी ढंग की गहरी जेबों वाली एक क़मीज़ और एक फ़ौजी टोपी खरीदी। इसके बाद वे स्टेशन के पास एक पंजाबी रेस्तराँ में खाना खाकर अपने कमरे में चले गये। यहाँ नाथूराम ने कमीज़ पहनकर देखी। वह बिलकुल ठीक थी।

एक बजने वाला था; अब उन्हें कमरा खाली कर देना था। नाथूराम और आप्टे नीचे टिकट की खिड़की पर गये। आज भी वहाँ वही क्लर्क सुन्दरीलाल ड्यूटी पर था, जिसने कल उन्हें कमरा दिया था। नाथूराम ने उससे पूछा कि क्या कमरा एक दिन के लिए और मिल सकता है?

सुन्दरीलाल ने बड़े रोब से नाथूराम से न सिर्फ़ यह कहा कि उसे कमरा नहीं मिल सकता, बल्कि खुद ऊपर जाकर खड़ा हो गया और अपने सामने उनसे कमरा खाली करा लिया। जिस वक़्त वे अपना सामान बाहर निकाल रहे थे उसने बहुत ऊँची आवाज़ में नौकर से दरवाज़े पर ताला लगा देने को कहा।

इन लोगों के काम करने के तरीक़े के भोंडेपन का पता इससे चलता है कि अपने साथियों के दिल्ली में न होने की सारी पेशबन्दी करने के बाद नाथूराम ने इसका भी पक्का बन्दोबस्त कर दिया था कि सुन्दरीलाल और रिटायरिंग-रूम के नौकर को उसके दोनों साथियों की सूरतें अच्छी तरह याद हो जायें।

वे अपना सामान लेकर दूसरे दर्जे के मुसाफ़िरों के वेटिंग-रूम में चले गये। एक बड़े-से कमरे में बेंत की बेंचें और कुछ मेज़ पड़े थे। हर वक़्त वहाँ कम-से-कम बीस मुसाफ़िर अपने परिवार और सामान के साथ मौजूद रहते थे। बच्चे चीख-चीखकर रोते रहते थे, बेटर खाना लेकर आते-जाते थे और कुली कुछ मुसाफ़िरों

का सामान लेकर वाहर जाते और नये मुसाफ़िरों का सामान लेकर अन्दर आते। उस जगह कोई गुप्त बात की ही नहीं जा सकती थी।

एक खाली बेंच पर उन्होंने नाथूराम को आराम करने के लिए लिटा दिया और खुद पास में ज़मीन पर बैठ गये कि उसका इशारा पाते ही फ़ौरन उछलकर खड़े हो जायें। वे दवे स्वर में बातें कर रहे थे। वे उससे वार-वार पूछते रहे : 'कोई खास चीज़ खाने-पीने को जी चाहता है?

हाँ, उसका जी नमकीन मूँगफली खाने को चाह रहा था।

करकरे और आप्टे उछलकर खड़े हो गये और बोले, 'अभी नीचे जाकर लिये आते हैं।' लेकिन स्टेशन पर या उसके आस-पास कहीं भी नमकीन मूँगफली नहीं मिलीं। वे मुँह लटकाये कमरे में वापस आ गये। नाथूराम जॉन फ़र्ग्यूसन की किताव नाइट इन ग्लेंजाइल पढ़ रहा था। उन्हें आता देखकर वह मुसकराकर उनसे बोला, 'मैं जानता था कि यहाँ कहीं नहीं मिलेंगी। मैं पहले भी कोशिश कर चुका हूँ।'

कुछ मिनट तक वे उसके पास इस तरह बैठे रहे जैसे अपने किसी रिश्तेदार की मृत्यु-शैया के पास बैठे हों। आप्टे ने उठकर करकरे को इशारा किया और नाथूराम से बोला, 'हम अभी घंटे-भर में लौटकर आते हैं।' वह सिर्फ़ मुसकरा दिया; उसने यह भी नहीं पूछा कि कहाँ जा रहे हो?

बाहर बरामदे में निकलकर आप्टे ने करकरे से कहा कि इस खाली वक़्त में जाकर यह पता क्यों न लगा आयें कि बिड़ला हाउस की गारद में कोई पुलिस वाला ऐसा तो नहीं है जो पूना से आया हुआ लगता हो।

टैक्सी लेकर वे अकवर रोड और अल्बुकर्क रोड के नाके तक गये। वहाँ उतरकर वे अल्बुकर्क रोड पर पैदल चलकर औरंगज़ेब रोड तक गये और वहाँ से फिर वापस आ गये। इस तरह उन्हें बिड़ला हाउस के फाटक को अच्छी तरह देखने का मौक़ा मिल गया। फाटक पर पहले से ज़्यादा पुलिसवाले थे, लेकिन सभी उत्तरी भारत के मालूम होते थे। वे पीछे मुड़े और एडवर्ड रोड आफ़िसर्स मेस के पास वाले टैक्सी स्टैंड से उन्होंने एक टैक्सी ली। जब वे इंडिया गेट के पास से होकर गुज़र रहे थे तो करकरे ने अचानक बड़े जोश के साथ ड्राइवर से टैक्सी रोकने को कहा।

'क्यों, क्या हुआ?' आप्टे ने घबराकर कहा।

'वह देखो।' वह इंडिया गेट के चारों तरफ खड़े हुए खाने-पीने की चीज़ों के ठेलों की तरफ़ इशारा कर रहा था और उनमें से एक पर नमकीन मूँगफलियाँ बिक रही थीं।

वे वापस पहुँचे तो दिल्ली स्टेशन की घड़ी तीन बजा रही थी। जब करकरे ने नाथूराम को मूँगफली का पैकेट दिया तो वह आँखें फाड़-फाड़कर उसे घूरता रहा। उसने पूछा, 'क्या पूना जाकर लाये हो?'

उसने मूँगफलियाँ सबको बाँटीं और जब वे उन्हें खा रहे थे तो आप्टे ने नाथूराम से बहुत धीमे स्वर में कहा कि बिड़ला हाउस के फाटक पर पुलिसवाले पहले से ज़्यादा तो ज़रूर हैं लेकिन उनमें से कोई ऐसा नहीं दिखायी दिया, जो उनकी तरफ़ का लगता हो।

अभी उन्हें एक घंटे का वक़्त और काटना था। अचानक उन्हें ऐसा लगा कि उनके पास एक-दूसरे से कहने को कुछ रह ही नहीं गया है। हर बार जब करकरे कुछ कहना चाहता तो उसका गला रुँध जाता, और आप्टे उसे घूर-घूरकर बोलने

की कोशिश करने से मना करता रहता।

वह वक़्त भी किसी तरह गुज़र गया। नाथूराम अपनी घड़ी देखकर उठ खड़ा हुआ। 'पौने चार,' उसने कहा, 'अब चलना चाहिए। मैंने चिट्ठियाँ डाक में डाल दी हैं।'

'हम लोग भी चलें ?' आप्टे ने पूछा।

'क्यों नहीं ?' नाथूराम ने कहा, 'इतनी दूर और आये किसलिए हो !' उसने अपनी फ़ौजी क़मीज़ की जेब पर हाथ मारा, मानो देख रहा हो कि पिस्तौल उसमें है या नहीं। इसके बाद वह बाहर चला गया।

आप्टे और करकरे उस बेंच पर बैठ गये, जिस पर नाथूराम अब तक लेटा हुआ था। दस मिनट बाद आप्टे ने कहा, 'चलो।' उन लोगों ने एक ताँगा किया। जब ताँगा चला तो करकरे अपने आँसू न रोक सका।

'धीरज रखो, विष्णुपन्त, धीरज रखो,' आप्टे उसे समझाता रहा, 'उसका बना-बनाया काम तुम अब बिगाड़ना तो नहीं चाहते।'

कनाट प्लेस पहुँचकर उन्होंने ताँगा छोड़ दिया और वहाँ से दूसरा ताँगा किया और उस पर वे बिड़ला हाउस की तरफ़ चले, और वहाँ से कुछ पहले ही उतर पड़े।

तब तक पुलिस को गांधीजी की हत्या करने की साज़िश का शक करने के लिए काफ़ी सबूत मिल चुके थे। मदनलाल तो शुरू में ही धमकी दे चुका था कि वे 'फिर आयेंगे'। इसके अलावा, अब पुलिस के पास उसका पूरा बयान भी था, जिसकी कई बातों की पुष्टि बम्बई में डॉ० जैन भी कर चुके थे। लेकिन बम्बई की पुलिस ने, जिसके इलाक़े में वे सभी लोग रहते थे, जिन पर साज़िश में शामिल होने का शक था, इस सारी जानकारी का सिर्फ़ इतना फ़ायदा उठाया कि उन्होंने सावरकर पर निगरानी बैठा दी। दूसरी तरफ़ दिल्ली की पुलिस ने भी, जिस पर गांधीजी की रक्षा की ज़िम्मेदारी थी, बिड़ला हाउस के फाटक पर गारद में कुछ और सिपाही बढ़ाकर और वहाँ के नौकरों में कुछ सादे लिबास वाले सिपाही तैनात करके सन्तोष कर लिया।

दिल्ली की पुलिस के पास अपने इस निकम्मेपन के लिए एक बहाना था कि गांधीजी ने ख़ुद मना कर रखा था कि उनकी जान बचाने के लिए कोई कार्रवाई न की जाये।

हत्या की धमकी के अलावा दिल्ली की पुलिस शरणार्थियों के बीच बढ़ती हुई बेचैनी से बहुत परेशान थी। वह देख रही थी कि गांधीजी के अनशन का असर बड़ी तेज़ी से मिटता जा रहा है और बहुत-से शरणार्थी मदनलाल की प्रशंसा में, जिसे वे अपना ही आदमी समझते थे, जिसके लिए कहते थे कि उसने उनका विरोध प्रकट करने का साहस तो किया, खुलेआम नारे लगा रहे थे। अगर किसी दूसरे सिरफिरे शरणार्थी ने मदनलाल की नक़ल करने की ठान ली तो क्या होगा ?

प्रार्थना-सभा में किसी को घातक हथियार ले जाने से रोकने के लिए सबसे अच्छा तरीक़ा यही था कि वहाँ जाने वाले हर आदमी की तलाशी ली जाये। लेकिन जब किसी ने गांधीजी से इसकी चर्चा की तो उन्हें बहुत धक्का लगा। उन्होंने पूछा, 'क्या गिरजाघर या मन्दिर या मसजिद में जाने वालों की तलाशी ली जाती है ?'

सच तो यह था कि इधर कुछ दिनों से गांधीजी अपनी अलग ही दुनिया में रहने लगे थे, जिसका उस दुनिया से कोई सम्बन्ध नहीं था, जिसमें सरकार चलाने और देश में क़ानून लागू करने वाले लोग रहते थे—बल्कि गांधी के विचारों की दुनिया का अब तक की किसी भी समाज-व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह पूरी संजीदगी के साथ ऐसी सेना की बात करते थे जो अहिंसा के रास्ते पर चले, 'ऐसे बहुमत दल की बात करते थे जो शासन करने की ज़िम्मेदारी से खुद ही हाथ खींच ले, ऐसी अर्थ-व्यवस्था की बात करते थे जो सारी वैज्ञानिक प्रगति को ठुकरा दे, ऐसे समाज की बात करते थे जो त्याग के उनके मानदंडों का और उनके मानवीय आदर्शों का पालन करे।

जिन पुलिसवालों को उनकी रक्षा करने का काम सौंपा गया था उनकी बहुत मुसीबत थी। उन्हें दबे पाँव चलना पड़ता था, जैसे वे इस बात से डर रहे हों कि किसी अपराधी को कोई नुक़सान न पहुँच जाये। प्रार्थना-सभा में आने वालों की तलाशी लेने का विचार त्याग दिया गया था। कोई भी बिना रोक-टोक के आ-जा सकता था।

इसलिए 30 जनवरी को जब एक आदमी स्लेटी रंग की क़मीज़ पहने हुए नौकरों वाले फाटक से अन्दर घुसा तो किसी ने उसे रोका नहीं। न किसी ने उन दो आदमियों को टोका, जो उसके आधे घंटे बाद सर्दी से बचने के लिए सुर्मई रंग की शालें ओढ़े और सिर पर ऊनी टोपियाँ लगाये हुए आये थे।

उससे पिछले दिन, 29 जनवरी को भी बिड़ला हाउस में एक अरुचिकर घटना हो गयी थी। बन्नू के कुछ शरणार्थी गांधीजी से मिलने आये थे। उन्होंने उनसे शिकायत की थी कि इतनी मुसीबतें झेलने के बाद उन्होंने जिन घरों पर क़ब्ज़ा कर लिया था, उनसे उन्हें निकाल दिया गया है।

उनके दिल में इतनी कटुता थी, इतना ग़ुस्सा था कि वे इस तरह की किसी दलील से सन्तुष्ट होने वाले नहीं थे कि धर्म-निरपेक्ष सरकार की कुछ ज़िम्मेदारियाँ और कुछ कर्तव्य होते हैं। गांधीजी के दार्शनिक प्रवचनों को सुनने के लिए तो वे बिलकुल भी तैयार नहीं थे।

'मैं पीड़ा सहकर शान्ति प्राप्त करना चाहता हूँ,' गांधीजी ने उनसे कहा।

'हमारी सारी मुसीबतों की जड़ आप हैं,' एक शरणार्थी ने झल्लाकर जवाब दिया, 'आप हमें हमारे हाल पर छोड़कर संन्यास लेकर हिमालय में क्यों नहीं चले जाते?'

'मेरा हिमालय यहीं है,' गांधीजी ने जवाब दिया था।

इससे पहले कि वह आदमी गांधीजी से कोई और सख़्त बात कहता, सादे लिबास वाले दो पुलिसवाले उसे वहाँ से हटा ले गये।

30 जनवरी। अगर गांधीजी को यह आभास रहा हो कि वह बाक़ी दिनों जैसा दिन नहीं था, तो वजह उसकी यही हो सकती थी कि उन्हें यक़ीन हो गया था कि जिस काम से वह दिल्ली आये थे, उन्होंने पूरा कर लिया है—यहाँ रहने वाले मुसलमानों की ज़िन्दगी को सुरक्षित बना दिया है। अब वह कहीं भी जाने के लिए आज़ाद थे, किसी भी और समस्या की ओर ध्यान दे सकते थे। और वह जाना भी चाहते थे, लेकिन जाने से पहले उन्हें अभी दो सवालों से और जूझना था। वह पिछले दो दिन से इन समस्याओं को हल करने की कोशिश कर रहे थे। आज

उनका हल उन्हें मिल गया था, या लगभग मिल चुका था।

इनमें से एक सवाल का सम्बन्ध पार्टी से था, और दूसरे का सरकार से। कांग्रेस के पुराने नेताओं के बीच चल रही 'सत्ता की छीना-झपटी' से उन्हें बेहद तकलीफ़ पहुँची थी, मानो अँगरेज़ों से आज़ादी हासिल करने के संघर्ष को मुख्य रूप से सत्ता व निजी लाभ के लोभ से ही प्रेरणा मिली हो। दूसरा सवाल यह तय करने का था कि प्रधानमन्त्री नेहरू हों या पटेल।

पहले सवाल का फ़ैसला तो उन्होंने अकेले ख़ुद ही तय कर दिया था, मानो कांग्रेस के लाखों सदस्य उनके निजी इशारों पर चलते हों। उन्होंने एलान किया कि पार्टी का 'अब कोई इस्तेमाल नहीं रह गया है।' इसलिए उन्होंने उसकी भूमिका बदल दी और उसके लिए एक नया संविधान बना दिया था, जिसमें उन्होंने उसे यह काम सौंपा था कि वह सक्रिय राजनीति से अलग हट जाये और एक विशाल नैतिक पुनरोत्थान के लिए एक सेना की तरह जनता की सेवा करे।

दूसरे सवाल का हल इतना आसान नहीं था। उन्हें उन दो आदमियों में से एक को चुनना था, जिनकी दोस्ती की वह सबसे ज़्यादा क़द्र करते थे।

नेहरू और पटेल के बीच खींचातानी बहुत दिनों से चल रही थी, लेकिन जब तक वे दोनों गांधीजी की छत्रछाया में थे तब तक इसका सवाल ही पैदा नहीं हुआ कि उनमें किसका स्थान ऊँचा है और किसका नीचा। अब वे दोनों सरकार में मन्त्री थे, और एक देश में दो प्रधानमन्त्री तो हो नहीं सकते, इसलिए एक का पद तो ऊँचा होना ही था और सच तो यह है कि उप-प्रधानमन्त्री का पद पटेल की आत्म-प्रतिष्ठा की भावना को सन्तुष्ट रखने के लिए ही बनाया गया था। लेकिन यह तो हद-से-हद एक काम-चलाऊ हल था, और पटेल हमेशा के लिए नेहरू से घटकर रहने को तैयार नहीं थे। इससे भी ज़्यादा महत्त्व की बात तो यह थी कि सरकार बनने के बाद पिछले पाँच महीनों में पटेल ने उन विभागों में, जो उनके आधीन थे, बहुत-सी शानदार सफलताएँ प्राप्त की थीं। पटेल का यह आत्म-विश्वास कि वह काम करा सकते हैं जितना ही बढ़ता गया, उतना ही अधिक वह नेहरू के प्रभुत्व से चिढ़ने भी लगे, और आपस की निजी बातचीत में वह नेहरू के आदर्शवादी होने और मुश्किल फ़ैसले करने में उनके संकोच की निन्दा करने का कोई अवसर छोड़ते नहीं थे। उनके सम्बन्ध, जो पहले सचमुच बहुत मित्रता-पूर्ण थे, इधर लगातार बिगड़ते गये। दोनों लगभग रोज़ ही गांधीजी से मिलते थे और एक-दूसरे की कोई-न-कोई शिकायत करते थे और दफ़्तर की फ़ाइलों पर जो टिप्पणियाँ लिखते थे, उनमें भी एक-दूसरे को डंक मारते थे।

नेहरू भले ही मुश्किल फ़ैसले करने में झिझकते हों, लेकिन गांधीजी बड़ी निर्मयता के साथ व्यवहार-कुशल थे और उन्हें इस बात पर गर्व था कि वह अपनी निजी भावनाओं को कभी राष्ट्रीय हित या राजनीतिक आवश्यकता के मार्ग में बाधा नहीं बनने देते थे। कई साल पहले उन्होंने नेहरू को अपना 'चहेता बेटा' घोषित कर दिया था। पटेल की बेटी मणिबेन एक डायरी रखती थीं। उसके अनुसार अब गांधीजी अपनी पसन्द के बारे में नये सिरे से विचार करने पर मजबूर हो गये थे। डायरी में लिखा है कि गांधीजी ने पटेल से कहा : 'तुम दोनों की आपस में नहीं बनती और हमेशा यही रहेगा। तुममें से एक को पीछे हटना होगा। इस समय तुम्हारी लोकप्रियता (तुम्हारा काम ?) देखते हुए तुम्हें ऊँचा उठाया जाना चाहिए।'

लेकिन अधिकांश दूसरे सवालों की तरह इस सवाल के बारे में भी, जिस पर

उनका भविष्य निर्भर था, नेहरू और गांधी दोनों ही की अपेक्षा पटेल कहीं अधिक स्पष्ट ढंग से सोचते थे। यह तर्क देते हुए कि जवाहरलाल उम्र में उनसे छोटे और उनसे कहीं अधिक लोकप्रिय थे, और यह कि उनकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी बहुत थी, पटेल ने गांधीजी को एक पत्र लिखा कि उन्हें (पटेल को) 'छुट्टी दे दी जाये।'

गांधीजी इससे सहमत नहीं थे, इसलिए उन्होंने पटेल से तीस तारीख को तीसरे पहर फिर आकर बात करने को कहा था।

इन दोनों समस्याओं में पूरी तरह डूबे होने के कारण गांधीजी को अपने बारे में सोचने का समय ही कहाँ था! दस दिन पहले की घटना से मची हलचल खत्म हो गयी थी। लेकिन उस समय भी गांधीजी को उस विस्फोट से कोई परेशानी नहीं हुई थी; क्योंकि उन्होंने समझा था कि किसी प्रकार का 'सैनिक अभ्यास' हो रहा है। और जब घटना के थोड़ी देर बाद लेडी माउंटबैटेन वहाँ आयीं और उनके शान्त स्वभाव पर उन्हें बधाई दी थी तो गांधीजी ने बतलाया कि उन्हें यह नहीं पता चला कि बिड़ला हाउस के अहाते में कोई विस्फोट हुआ था। 'बधाई का हक़दार तो मैं तब होता जब कोई बिलकुल मेरे सामने आकर मुझे गोली मार देता और मैं अपने हृदय में राम-नाम लिये मुसकराते हुए चुपचाप गोली खा लेता।'

अब उनके इम्तहान की घड़ी आ गयी थी।

गांधीजी ने रोज़ की तरह आज भी सुबह साढ़े तीन बजे उठकर प्रार्थना की, फिर अपनी चौकी पर बैठकर तीन घंटे काम किया और इससे पहले कि ज़्यादातर लोग जागें, वह फिर सो गये थे। आठ बजे उठकर उन्होंने उस दिन के अखबार पढ़े, और बदन की मालिश करायी, और स्नान किया। साढ़े नौ बजे उन्होंने नाश्ता किया, जिसमें हमेशा की तरह आज भी बकरी का दूध, उबली हुई और कच्ची सब्ज़ियाँ, सन्तरे और अदरक तथा नीबू की चटनी थी। दो घंटे तक और काम करने के बाद वह फिर सो गये। दो बजे तक वह उन बीस आदमियों से मिलने के लिए तैयार हो गये, जिन्हें रोज़ उनके कमरे में जाने की इजाज़त दी जाती थी: शरणार्थी नेता, कुछ चुने हुए सम्वाददाता, उनके इर्द-गिर्द मँडराने वाले लोग, कुछ भक्त जो सिर्फ़ उनके दर्शन करना चाहते थे, उनके आश्रमवासियों के मित्र, बड़े सरकारी अफ़सर और फिर मन्त्री तो थे ही। बिड़ला हाउस अभी तक ऐसी जगह थी, जहाँ सरकार के सर्वोच्च निर्णय लिये जाते थे या अस्वीकार किये जा सकते थे।

चार बजे सरदार पटेल अपनी बेटी के साथ आये। वह एक घंटे तक गांधीजी के साथ रहे, लेकिन ऐसा लगता है कि उनके त्यागपत्र के बारे में कोई अन्तिम फ़ैसला नहीं हो पाया। मणिबेन पटेल की डायरी में एक ऐसी बेमानी बात लिखी है, जिसे पढ़कर दिमाग़ चकरा जाता है। उन्होंने लिखा है कि सरदार पटेल ने उन्हें गांधीजी से बातचीत का जो सारांश बतलाया, यह है:

> आखिरी दिन भी गांधीजी से मेरी बातचीत हुई थी। उस वक़्त (उन्होंने) मुझसे कहा था कि तुम दोनों में से किसी के भी निबाह करना मुमकिन नहीं है। दोनों को रहना चाहिए। कल जब मिलेंगे तब सारी बातें साफ़ कर लेंगे।[1]

---

1. डायरी में यही लिखा है। शायद 'किसी के भी' के बाद 'बिना' लिखना वह भूल गयी थीं। —अनु०

वह कल कभी नहीं आया। लेकिन गांधीजी ने यक़ीनन यह कहा होगा कि पटेल और नेहरू दोनों को रहना चाहिए; क्योंकि उन दोनों में से किसी के भी बिना काम चलाना मुमकिन नहीं था।

पाँच बजे से कुछ देर पहले मनु और आभा गांधीजी के कमरे में आयीं। गांधीजी ने अपनी कमर में लटकी घड़ी देखकर पटेल से कहा कि प्रार्थना-सभा में जाने का समय हो गया है। पाँच बजकर दस मिनट पर वह कमरे से बाहर निकले। हमेशा की तरह उनके एक तरफ़ आभा थी और दूसरी तरफ़ मनु, ताकि वह उनके कन्धों का सहारा लेकर चल सकें। मनु के हाथ में गांधीजी का थूक-दान और माला थी। गांधीजी ने तेज़ी से चलते हुए नीचे वाला लॉन पार किया और उन पाँच अर्ध-गोलाकार नीची-नीची सीढ़ियों पर चढ़ने लगे जो लॉन के उस ऊँचे वाले हिस्से तक जाती थीं, जहाँ प्रार्थना-सभा के लिए आये हुए श्रोता उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गांधीजी ने हाथ जोड़कर उनके अभिवादन का जवाब दिया।

उस दिन प्रार्थना-सभा में जितनी भीड़ थी उतनी आमतौर पर नहीं होती थी; लगभग पाँच सौ आदमी रहे होंगे। करकरे और आप्टे भीड़ के बीच से रास्ता बनाते हुए आगे निकलकर नाथूराम के दोनों तरफ़ खड़े हो गये थे; उसने उन्हें देखा भी हो तो भी पहचानने का कोई संकेत नहीं दिया। भीड़ में एक हलचल-सी पैदा हुई और लोगों ने गांधीजी को लॉन पार करके सीढ़ियाँ चढ़ते हुए देखा।

नाथूराम ने बाद में अपने भाई गोपाल को बतलाया कि गांधीजी के आगे-आगे जो दो लड़कियाँ चल रही थीं, उनकी वजह से वह कुछ परेशान हो गया था। जब गांधीजी ने अपना हाथ उठाकर वहाँ पर एकत्रित लोगों का अभिवादन किया तो नाथूराम ने जेब के अन्दर रखे-रखे ही पिस्तौल का खटका खोला और वह एक क़दम आगे बढ़कर गांधीजी के सामने आ गया।

> पिस्तौल दाहिने हाथ में लेकर मैंने हाथ जोड़े और कहा 'नमस्ते!' बायें हाथ से मैंने उस लड़की को एक तरफ़ हटा दिया जो मेरे निशाने के झपेट में आ सकती थी। इसके बाद अपने आप ही गोलियाँ चल गयीं। मुझे मालूम भी नहीं हुआ कि मैंने दो गोलियाँ चलायीं या तीन। गांधीजी का दम उखड़ गया और वह 'आह!' भरकर गिर पड़े। मैं अपना हाथ ऊपर उठाये रहा; पिस्तौल मज़बूती से पकड़े हुए मैं चिल्लाने लगा, 'पुलिस...पुलिस!' मैं चाहता था कि हर आदमी देख ले कि मैंने जो कुछ किया था पहले से सोच-समझकर किया था, जान-बूझकर किया था—मैंने क्षणिक आवेश में आकर कुछ नहीं किया था। मैं यह नहीं चाहता था कि कोई यह कहे कि मैंने भागने की या पिस्तौल फेंक देने की कोशिश की; मैं पिस्तौल के साथ पकड़ा जाना चाहता था। लेकिन अचानक एकदम सन्नाटा छा गया और कम-से-कम आधे मिनट तक कोई भी आगे नहीं बढ़ा।

उसने महसूस किया कि जब तक पिस्तौल उसके हाथ में है लोग उसके पास आते डर रहे हैं। वह उम्मीद कर रहा था कि वे किसी तरह यह समझ लेंगे कि वह गिरफ़्तारी से बचने की कोशिश नहीं करेगा। जब एयरफ़ोर्स की वर्दी पहने हुए एक आदमी ने झपटकर उसकी कलाई पकड़ ली, तो उसे ऐसा सन्तोष मिला कि

उसके शरीर का अंग-अंग ढीला पड़ गया। उसने पिस्तौल हाथ से छोड़ दिया। इसके बाद कुछ दूसरे लोग भी, जिन्होंने बाद में उस पर झपटकर उसे क़ाबू में कर लेने की गवाही दी, उसके चारों ओर जमा हो गये और उसे गालियाँ देने लगे और पीटने लगे। नाथूराम ने देखा कि पिस्तौल एक हाथ से दूसरे हाथ में जा रहा है, उसने चिल्लाकर पुलिस के एक अफ़सर से कहा, 'उसे अपने क़ब्ज़े में करके खटका चढ़ा दो, नहीं तो वे एक-दूसरे को मार डालेंगे।'

जब मनु गांधी ने थूकदान और माला उठाकर, जो उसे धक्का दिये जाने के वक़्त नीचे गिर गये थे, अपने बापू की ओर देखा, तो वह ज़मीन पर निश्चल पड़े थे और उनके नंगे सीने से जहाँ गोलियाँ लगी थीं, ख़ून बह रहा था।

किसी ने यह नहीं देखा कि जिस समय गांधीजी ने अपने हत्यारे का सामना किया था, उस समय उनके चेहरे पर मुसकराहट थी या नहीं। लेकिन पानीपत के एक सिख व्यापारी गुरबचनसिंह ने, जो गांधीजी का भक्त था और जिस समय गांधीजी गिरे थे, उनसे कुछ ही क़दम पीछे चल रहा था, अपनी गवाही में कहा कि गांधीजी के मुँह से निकले अंतिम शब्द थे: 'हे राम!' इसके विपरीत, करकरे, जो गांधीजी से कुछ ही फ़ुट की दूरी पर खड़ा हुआ था और जिसने उनके गोलियाँ लगते देखा था, इस लेखक को क़सम खाकर बतलाया कि गांधीजी के मुँह से पीड़ा की एक चीख़ और एक दबी हुई 'आह!' निकली थी।

हो सकता है कि दोनों ही ग़लत हों और जो कुछ उन्होंने सुना, या जो वह कहते हैं कि उन्होंने सुना, इस बात से प्रभावित हो कि उनके मन में गांधीजी के प्रति श्रद्धा थी या तिरस्कार। यह भी हो सकता है कि दोनों ही सही हों और अपनी अन्तिम साँस के साथ जब गांधीजी ने 'हे राम!' कहा हो तो वह करकरे को पीड़ा की चीख़ जैसा सुनायी दिया हो।

जब पुलिस नाथूराम को भीड़ के हाथों पिटाई से बचाने के लिए एक ओर ले जा रही थी, बहुत-से लोग डरकर फाटक की ओर भाग रहे थे।

ग्यारहवाँ अध्याय

...उस दिन (हाईकोर्ट में) जो लोग मौजूद थे उन्हें अगर जूरी बना दिया जाता और गोडसे की अपील का फ़ैसला करने का काम सौंप दिया जाता, तो वे 'दोषी नहीं' का फ़ैसला देते।

—जस्टिस जी० डी० खोसला

ठीक वैसा ही हुआ जैसा मदनलाल ने कहा था : 'फिर आयेंगे !'

वे फिर आये और इस बार उनका वार निशाने पर लगा। पुलिस को कम-से-कम नौ दिन पहले चेतावनी मिल गयी थी कि साज़िश का एक प्रमुख नेता पूना या बम्बई के मराठी अखबार का सम्पादक है, जिसका नाम मदनलाल ने हिन्दू राष्ट्र बतलाया था। अब उसी आदमी ने गांधीजी की हत्या कर दी थी।

हत्या के बाद सारे अधिकारी बड़ी मुस्तैदी से दौड़-धूप करने लगे। बीस मिनट के अन्दर बम्बई के गृह-मन्त्री मोरारजी देसाई ने, जिन्हें आपको याद होगा, प्रोफ़ेसर जैन ने नौ दिन पहले बता दिया था कि मदनलाल और उसके साथियों ने गांधीजी की हत्या करने की साज़िश की थी, पुलिस के डिप्टी-कमिश्नर नागरवाला को टेलीफ़ोन करके उन्हें हत्या की सूचना दी और उन्हें 'अगली आवश्यक कार्रवाई करने' का आदेश दिया।

लेकिन उस समय तो गांधीजी की हत्या के कारण पैदा हो गयी अशान्ति और अव्यवस्था की नयी समस्या की ओर पहले ध्यान देना ज़रूरी था, इसलिए पुलिस की फ़ेहरिस्त में जिन संदिग्ध लोगों के नाम थे उनको गिरफ़्तार करने की कार्रवाई कुछ समय के लिए टली रही। इस बात का पता लगते ही कि हत्या करने वाला ब्राह्मण था, मध्य और पश्चिमी भारत में ब्राह्मणों पर गालियों की बौछार होने लगी और उन पर पत्थर फेंके जाने लगे और गुंडों के गिरोहों ने उनके घरों और दूकानों को आग लगाना शुरू कर दिया। उनके पास बहाना यह था कि इस बिरादरी के एक आदमी ने जो कुछ किया था उस पर उन्हें बेहद गुस्सा है।

इस तरह का उन्माद भारत की विशेषता है, जहाँ साम्प्रदायिक कलह केवल दो धर्मों के झगड़े तक ही सीमित नहीं है। यह विष समाज के पूरे ढाँचे में फैला हुआ है और इसका सबसे अधिक उग्र और पाशविक रूप स्वयं हिन्दुओं के जात-

पाँत वाले सामाजिक ढाँचों के विभिन्न स्तरों में देखने को मिलता है। गांधीजी का हत्यारा जिस किसी वर्ण या जाति या बिरादरी का होता, अनिवार्य रूप से कुछ लोग ऐसे ज़रूर होते, जो उस वर्ण या जाति या बिरादरी से बदला चुकाने के लिए इस अवसर का लाभ उठाने की कोशिश करते।

और अगर हत्यारा मुसलमान होता, तो हिन्दुओं और सिखों को भारत की पूरी मुसलिम आबादी के खिलाफ़ कमर कसकर मैदान में उतर आने का बहुत अच्छा बहाना मिल जाता, जिसने सामान्य रूप से बढ़ते-बढ़ते पाकिस्तान के साथ भरपूर युद्ध का रूप धारण कर लिया होता। शायद लॉर्ड माउंटबैटेन ने इस खतरे को भारतीय नेताओं के मुक़ाबले ज़्यादा जल्दी भाँप लिया था। गांधीजी की हत्या के कुछ ही मिनट के अन्दर वह बिड़ला हाउस पहुँच गये थे। उस समय जो कुछ हुआ उसका वर्णन उनके प्रेस-सेक्रेटरी एलन कैम्पबेल-जॉन्सन ने इन शब्दों में किया है :

> ऐसा तनाव है कि लापरवाही में एक शब्द भी कह दिया जाये या कोई भी अफ़वाह उड़ा दी जाये, तो वह जंगल की आग की तरह चारों ओर फैल जायेगी। हमारे पहुँचते ही, किसी अफ़वाह उड़ाने वाले ने माउंटबैटेन को रोककर उनसे कहा, 'किसी मुसलमान का काम है।' तब तक हमें हत्यारे का नाम या उसका धर्म नहीं मालूम था, लेकिन माउंटबैटेन ने यह समझते हुए कि अगर हत्यारा मुसलमान हुआ तो तबाही हर हालत में मचेगी और भयानक विनाशकारी गृह-युद्ध को किसी भी तरह नहीं रोका जा सकेगा, फ़ौरन जवाब दिया : 'बेवक़ूफ़ कहीं के, जानते नहीं कि वह हिन्दू है।'

यह सुनकर कि हत्यारा हिन्दू है, सबकी जान-में-जान आयी—ब्राह्मणों को छोड़-कर, जो अचानक 'बापू के हत्यारे' बन गये थे। ब्राह्मणों के खिलाफ़ बम्बई में खासतौर पर बहुत उग्र दंगे हुए और वहाँ शान्ति स्थापित करने के काम में पुलिस की मदद करने के लिए फ़ौज बुलानी पड़ी। इसलिए नागरवाला अगले दिन तीसरे पहर तक हत्याकांड के बारे में कोई कार्रवाई नहीं कर सके, जिसका आदेश उन्हें ऊपर से मिला था, और जब कार्रवाई की भी तो उसका रूप यह हुआ कि सावरकर के घर पर छापा डालकर उनके सारे निजी काग़ज़ात ज़ब्त कर लिये गये, 'जिनमें 143 फ़ाइलें थीं और उनमें 10,000 पत्र थे।'

लेकिन उस दिन सावरकर को स्वतन्त्र व्यक्ति रहने दिया गया। उनके खिलाफ़ सबूत इतने मज़बूत नहीं थे कि उन पर हत्या की साज़िश में शामिल होने का आरोप लगाया जा सके। सच तो यह है कि उनके खिलाफ़ कोई सबूत था ही नहीं। बस इतना मालूम था कि साज़िश करने वालों का हिन्दू महासभा के साथ सम्बन्ध था और निजी तौर पर वे सावरकर के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। मोरारजी ने नागरवाला को जो कुछ भी बतलाया था (जो डॉ० जैन द्वारा मोरारजी को बतलायी बातों पर आधारित था), उसके अलावा यही बात सावरकर पर साज़िश के पीछे खास आदमी होने का सन्देह करने के लिए अगर एकमात्र नहीं तो मुख्य आधार अवश्य थी। लेकिन यह भी साबित नहीं किया जा सकता कि गुप्त रूप से मोरारजी देसाई को बतलायी बातों में प्रोफ़ेसर जैन ने सावरकर का नाम लिया था। हत्या के मुक़दमे में जिरह के दौरान डॉ० जैन ने स्वीकार किया, 'मैंने 17 फ़रवरी 1948 तक इस मामले से सम्बन्धित तथ्य किसी को लिखकर

नहीं दिये थे और दस दिन बाद मैंने जो बयान दिया था, उसमें मैंने यह नहीं कहा था कि मदनलाल ने मुझे बतलाया था कि वीर सावरकर ने उसे बुलवाया था।'

बहुत बाद में जाकर, जब डॉ० जैन ने अपने बयान में बहुत हेर-फेर करके उसे सँवार लिया था, पहली बार उसमें सावरकर का नाम आया। इस बात का कभी कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया गया कि उन्होंने इतनी बुनियादी जानकारी का उल्लेख अपने पहले हलफ़िया बयान में क्यों नहीं किया था।

इसके विपरीत, मदनलाल का बयान ज़्यादा स्पष्ट है। उसने अपने मुक़दमे के दौरान जज से कहा: 'मुझे सावरकर ने कभी नहीं बुलाया था।...जैन के साथ सावरकर के बारे में मेरी कभी कोई बात नहीं हुई।' और उस घटना के बीस वर्ष बाद भी, जब वह अपनी सज़ा काटकर छूट आया, उसने क़सम खाकर कहा[1] कि उसने डॉ० जैन से कभी सावरकर का ज़िक्र तक नहीं किया था।

गांधीजी की हत्या के सिलसिले में जिन दो और आदमियों, विष्णु करकरे और गोपाल गोडसे, को उम्र-क़ैद हुई, उनसे भी सावरकर के मर जाने के बाद इसके बारे में सवाल किये गये थे, और जब लेखक ने उनसे बातचीत की तो उन्होंने भी इतने ही आग्रह के साथ कहा कि सावरकर का गांधीजी की हत्या की साज़िश के साथ क़तई सम्बन्ध नहीं था।

उन तीनों का यही मत था कि यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि डॉ० जैन ने अपना जो पहला बयान दर्ज कराया उसमें उन्होंने सावरकर का कहीं नाम तक नहीं लिया था। उन्होंने कहा कि डॉ० जैन का बयान हत्या के तीन हफ़्ते से ज़्यादा समय बीत जाने के बाद लिखा गया था और तब तक सावरकर भी नज़रबन्द किये जा चुके थे। इससे उन लोगों ने नतीजा यही निकाला कि सावरकर का नाम बाद में जोड़ा गया था।

उनकी दलील इस प्रकार है: डॉ० जैन कुछ दिन जेल में रह चुके थे। इसलिए उन्हें पुलिस से बेहद चिढ़ हो गयी थी। पुलिस के अफ़सर उनसे इसलिए चिढ़े हुए थे कि वह पहले उनके पास न आकर सीधे मोरारजी के पास क्यों गये? नतीजा यह हुआ कि जब डॉ० जैन डिप्टी-कमिश्नर नागरवाला से मिलने गये तो नागरवाला उनके साथ बड़ी रुखाई से पेश आये; उन्हें गिरफ़्तार तक कर लेने की धमकी दी।

उनको पक्का यक़ीन था कि डॉ० जैन सावरकर के खिलाफ़ पुलिस का केस मज़बूत करके अपनी पिछली ग़लतियों को सुधारकर पुलिस को खुश करने की कोशिश कर रहे थे। अपनी इस दलील के समर्थन में उन्होंने बतलाया कि डॉ० जैन ने मदनलाल से अपनी बातचीत के बारे में जो पहला बयान दिया था और बाद में जो बयान दिये, उनमें बहुत अन्तर है। यह बात जस्टिस कपूर को भी खटकी। ज़स्टिस कपूर के अनुसार, 'जैन ने पहले कहा था कि मदनलाल की बातें से हत्या करने की साज़िश का संकेत मिलता था और बाद में उन्होंने उसमें यह कहानी जोड़ दी कि उद्देश्य यह था कि गड़बड़ी पैदा करके महात्मा गांधी का अपहरण कर लिया जाये।' उन लोगों का ख़याल था कि यह नागरवाला की 'अपहरण' वाली अटकलबाज़ी से पूरी तरह मेल खाता है।

जस्टिस कपूर को भी यह बहुत अजीब लगा कि डॉ० जैन किसी पुलिस-अफ़सर के पास जाने की बजाय सीधे मन्त्री को अपनी बातें बताने गये। कपूर के

1. इस लेखक से। उस समय तक सावरकर तो मर चुके थे।—लेखक

अनुसार, इसकी एक वजह यह हो सकती है कि ' "प्रगतिशील" और "वामपंथी" होने के कारण उन्हें पुलिस से बहुत लगाव नहीं रहा होगा।'

लेकिन डॉ० जैन के पक्ष में इतना तो ज़ोर देकर कहना ही पड़ेगा कि उनकी जगह अगर कोई दूसरा होता तो शायद वह भी इतनी सनसनीखेज़ खबर लेकर पुलिस के पास न जाता। और फिर यह तो यहाँ एक आम बात है कि अगर किसी ने सड़क पर कोई दुर्घटना होते या डाका पड़ते भी देखा हो तो बाद में पुलिस की जाँच-पड़ताल और अदालत की कार्रवाई के चक्कर से बचने के लिए वह फ़ौरन वहाँ से खिसक जाता है। जस्टिस कपूर को डॉ० जैन का पुलिस के पास जाने में संकोच बड़ा अजीब लगा। लेकिन गांधी-हत्याकांड के मुक़दमे की सुनवाई करने वाले जज, जस्टिस आत्माचरण ने सूचना देने के लिए उनके 'साहस और ईमानदारी' की सराहना की। जस्टिस आत्माचरण ने कहा कि 'उन्होंने वक़्त के तक़ाज़े को पूरा किया। उन्होंने अनिवार्य परिणामों का बोझ अपने कंधों पर उठाया और समाज के प्रति अपना कर्तव्य निभाया।'

इसलिए कुछ अभियुक्तों की इस दलील में बहुत ज्यादा दम नहीं मालूम होता कि सावरकर का नाम जोड़कर डॉ० जैन पुलिस का केस मजबूत करने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन अगर वह ऐसा कर भी रहे हों तो पुलिस सावरकर को फँसाने के लिए इतनी उत्सुक क्यों थी? कहीं सिर्फ़ ऐसा तो नहीं है कि नाथूराम को गांधीजी की हत्या करने से पहले गिरफ़्तार करने की अपनी ज़िम्मेदारी निभाने में असमर्थ रहने पर वे अब अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए ऐसी सनसनीखेज़ साज़िश का हौआ खड़ा करने की कोशिश कर रहे थे, जिसमें किसी ऐसे बड़े नेता का हाथ था जिससे, संयोगवश, सरकार भी उस समय नाराज़ थी? या कहीं ऐसा तो नहीं था कि सरकार खुद या उसके अन्दर कोई ताक़तवर गुट एक विरोधी राजनीतिक संगठन को नष्ट करने की, विरोध पक्ष के बेहद अड़ियल नेता को नष्ट करने की कोशिश कर रहा था?

या यह धार्मिक, जातीय, भाषागत, या प्रान्तीय भय के किसी विशेष रूप की अभिव्यक्ति थी, जिसके कारण समाज का एक हिस्सा अपना सारा ज़हर उगलने के लिए सावरकर को एक सहज निशाना बना रहा था?

बात जो भी रही हो, सावरकर को खुद इन सभी विचारधाराओं का इतनी अच्छी तरह आभास था, और उन्हें इस बात का इतना विश्वास था कि अधिकारी-वर्ग नाथूराम के साथ मिलीभगत के अपराध में उन्हें अदालत के कटहरे में खड़ा करने पर तुला हुआ है, कि जब गांधीजी की हत्या के पाँच दिन बाद पुलिस उनके घर पर आयी तो वह खुद आगे बढ़कर उससे मिले और पूछने लगे: 'तो आप लोग मुझे गांधी की हत्या के सिलसिले में गिरफ़्तार करने आये हैं?'

हालाँकि अभी तक पुलिस के पास उन्हें गिरफ़्तार करने के लिए काफ़ी सबूत नहीं थे, पर आयी वह इसी उद्देश्य से थी। यह सच है कि उनके घर से जो ढेरों काग़ज़ात ज़ब्त किये गये उनमें बीसियों ख़त नाथूराम के और कोई आधे दर्जन ख़त आप्टे के थे, लेकिन पुलिस को इस बात से बहुत निराशा हुई कि उनमें कोई भी आपत्तिजनक बात नहीं थी। उनके आधार पर इतना ही साबित किया जा सकता था कि नाथूराम और आप्टे सावरकर को जानते थे और दोनों उनका बहुत सम्मान करते थे। लेकिन सिर्फ़ इतनी बात मजिस्ट्रेट को यह समझाने के लिए काफ़ी नहीं थी कि उनके ख़िलाफ़ वारंट जारी करने के लिए पर्याप्त सबूत है।

लेकिन यह तो एक क़ानूनी बारीकी थी, जिससे बचने के लिए उन्हें नज़रबन्दी

क़ानून में गिरफ़्तार कर लिया गया। इसके बाद पुलिस उनके ख़िलाफ़ सबूत जुटाने में लग गयी, ताकि उनकी 'नज़रबन्दी' को 'पकड़े जाने के दिन से' ही 'गिरफ़्तारी' में बदल दिया जाये।

उस वक़्त वह चौंसठ साल के थे और साल-भर से ज़्यादा से बीमार थे। उन्हें 5 फ़रवरी 1948 को नज़रबन्द किया गया था और छानबीन और मुक़दमे की सुनवाई के दौरान वह साल-भर तक जेल में रहे। 10 फ़रवरी 1949 को उन्हें बरी कर दिया गया। जो आदमी भारत की आज़ादी के संघर्ष में भाग लेने के अपराध में अँगरेज़ों के शासन में छब्बीस साल तक जेल में रह चुका था, उसे आज़ादी मिलते ही साल-भर के लिए फिर जेल में डाल दिया गया।

बिड़ला हाउस से नाथूराम को पूछताछ के लिए तुग़लक रोड थाने ले जाया गया। ऐसा लगता है कि पुलिस नाथूराम के साथ काफ़ी नरमी से पेश आयी।

वह लगातार यही कहता रहा कि गांधीजी की हत्या के लिए अकेला वही ज़िम्मेदार है और इस अपराध में उसके कोई साथी नहीं थे। उसने बड़ी सावधानी बरतते हुए ऐसी कुछ भी जानकारी नहीं दी, जिससे कोई दूसरा आदमी फँसाया जा सके। लेकिन नाथूराम जैसे लोग झूठ बोलने में बहुत कच्चे होते हैं। पहली बात तो यह कि पुलिस को उसकी जेब में एक डायरी मिली थी, जिसमें उसने बाक़ायदा सारा हिसाब लिख रखा था कि उसने किस मद में कितने पैसे ख़र्च किये थे। उस हिसाब में 'टैक्सी के 9 रु०, खाने के 8 रु०, और ताँगे के 20 रु०' जैसी रक़मों के अलावा यह रक़में भी शामिल थीं: 'बन्दोपन्त को 50 रु०, गोपाल को 250 रु०,' और 'बम्बई से दिल्ली के हवाई जहाज़ के 308 रु०'। पुलिस को यह पता लगाने में कुछ कठिनाई भले ही हुई हो कि बन्दोपन्त कौन है—नाथूराम और आप्टे ने यह नाम बडगे का रखा था—लेकिन यह तो उन्हें शुरू से ही मालूम होगा कि गोपाल नाथूराम के भाई का नाम है और यह कि 308 रु० बम्बई से दिल्ली तक का एक आदमी का नहीं बल्कि दो आदमियों का किराया होता था।

ऐसा लगता है कि नाथूराम ने अपनी तमाम सावधानी के बावजूद पूछताछ करने वालों को और भी बहुत-से सुराग़ दे दिये थे। उसने उन्हें बतलाया कि 20 जनवरी और 30 जनवरी के बीच वह ज़्यादातर बम्बई में था और 24 से 27 तारीख़ तक 'एलफ़िंस्टन होटल' में ठहरा था।

दिल्ली पुलिस के बयान के अनुसार उन्होंने बम्बई की पुलिस से एलफ़िंस्टन होटल के रजिस्टर से यह मालूम करने को कहा कि 24 से 27 जनवरी तक नाथूराम के साथ वहाँ दूसरा आदमी कौन ठहरा था?

एलफ़िंस्टन होटल हार्नबी रोड पर था। 5 फ़रवरी को बम्बई सी० आई० डी० के कुछ लोग वहाँ ठहरने वालों का रजिस्टर देखने गये। रजिस्टर में जो नाम दर्ज थे उनसे कुछ भी पता नहीं चला और वहाँ के मैनेजर और किसी भी नौकर को ऐसे किसी आदमी की याद नहीं थी जो नाथूराम के उस विवरण से मेल खाता हो, जो दिल्ली की पुलिस ने भेजा था। मैनेजर ने उनसे पूछा कि कहीं वह एलफ़िंस्टन एनेक्सी के बारे में तो नहीं पूछ रहे, जो कार्नक रोड पर एलफ़िंस्टन होटल की एक शाखा थी?

पुलिसवालों ने मैनेजर से टेलीफ़ोन करके वहाँ से पता लगाने को कहा।

एलफ़िंस्टन एनेक्सी बहुत घने बसे हुए इलाक़े में एक छोटा-सा सस्ता होटल

है, और वहाँ के मैनेजर कश्मीरीलाल ने जब टेलीफ़ोन उठाया तो उसे खुली गैलरी में से आसानी से देखा और सुना जा सकता था। कुछ कमरों में जाने का रास्ता भी इसी गैलरी में से था। कश्मीरीलाल ने बाद में अपनी गवाही में बतलाया :

> 5 नम्बर के कमरे में ठहरे दो मुसाफ़िर बाहर गैलरी में निकल आये। (एक नौकर) गोविन्दा ने मुझे बताया कि उन दोनों मुसाफ़िरों में से एक उस आदमी जैसा लगता था जो 24 जनवरी को 6 नम्बर के कमरे में ठहरा था।

दोनों में से एक ने कश्मीरीलाल के पास आकर पूछा कि किस बात पर इतनी खलबली मची हुई है ? कश्मीरीलाल ने यह कहकर टाल दिया कि 'तुम्हारे मतलब की बात नहीं है'। इसके बाद वह रजिस्टर लेकर एलफ़िंस्टन होटल गया, जहाँ दो पुलिसवाले उसकी राह देख रहे थे। जब तक वह पुलिसवालों को साथ लेकर वापस आया, वे दोनों मुसाफ़िर जा चुके थे।

वे आप्टे और करकरे थे।

इस बात का पता लगाने की कोशिश के दौरान कि साज़िश के बारे में पहले से किसको क्या मालूम था, कपूर-कमीशन को लगातार देश के बड़े-बड़े अफ़सरों के बीच इस प्रवृत्ति का सामना करना पड़ा कि उनमें से कोई भी ठीक से नहीं बतलाता था कि किसने किससे क्या कहा था। दिल्ली से आये हुए पुलिस के दो अफ़सरों, सरदार जसवन्तसिंह और बालकिशन ने, नागरवाला को क्या बतलाया था, इसके बारे में उनका बयान उन दोनों अफ़सरों के बयान से बहुत भिन्न था। कपूर-कमीशन ने जब नागरवाला से यह पूछा कि क्या उन दोनों अफ़सरों की रिपोर्ट का वह पैराग्राफ़, जिसमें उन लोगों ने बम्बई में कोई काग़ज़ उन्हें दिखाये जाने का हवाला दिया था, झूठा था, तो नागरवाला ने जवाब दिया था : 'जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, ऐसी ही बात है।'

दिल्ली पुलिस के प्रधान संजेवी और बम्बई प्रान्त की सी० आई० डी० के डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल राणा के बीच, संजेवी और नागरवाला के बीच, और उन दिनों नागरवाला के फ़ौरन ऊपर वाले अफ़सर बम्बई शहर के पुलिस-कमिश्नर भरूचा के बीच बुनियादी बातों पर इसी तरह के मतभेद थे। समझ में नहीं आता कि उन्हीं से यह 'गुप्त' क्यों रखा जा रहा था कि उनका विभाग इस खबर की छानबीन कर रहा है कि कुछ लोग गांधीजी की हत्या करने की कोशिश कर रहे थे।

मुख़्तसरन्, इन बयानों के एक-दूसरे से इतना भिन्न होने की एक वजह यह हो सकती है कि ये अफ़सर जाँच-कमीशन के सामने गवाही दे रहे थे। इसलिए वे जवाब देते समय बेहद सतर्क रहते थे और उस चीज़ की आड़ लेने की कोशिश करते थे, जिसे कपूर-कमीशन ने उनके संगठन की 'बहु-खंडीयता' कहा है। शुरू में छानबीन की ज़िम्मेदारी एक आदमी के नीचे काम करने वाले किसी एक विभाग को नहीं सौंपी गयी, जिसे छानबीन के तरीक़े के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता। यह काम तीन अलग-अलग पुलिस दलों को सौंपा गया—दिल्ली की पुलिस, बम्बई प्रान्त की पुलिस और बम्बई शहर की पुलिस—लेकिन तीनों के बीच आपस में पूरा सहयोग नहीं था। इस तरह के कई उदाहरण मिलते हैं कि कोई बहुत बुनियादी महत्त्व की ज़ानकारी किसी एक की फ़ाइल में मौजूद

थी, लेकिन उसकी सूचना फ़ौरन दूसरों को इसलिए नहीं दी गयी कि उन्होंने माँगी नहीं थी। जैसा कि नागरवाला ने कपूर-कमीशन को बतलाया : 'छानबीन दिल्ली की पुलिस कर रही थी और मदद माँगने की ज़िम्मेदारी उनकी थी।'

यह सच है कि सारी दुनिया में विभागीय कार्रवाई इसी तरह चलती है; बड़े संगठनों को अलग अलग खंडों में बँटे रहकर काम करना पड़ता है और कोई घटना हो जाने के बाद ही निष्कर्ष से यह पता चलता है कि एक दफ़्तर के पास जो जानकारी थी वह अगर दूसरे के हाथ में होती तो भयानक तबाही से बचा जा सकता था।

नागरवाला ने यह दलील शायद यह साबित करने के लिए दी हो कि कपूर-कमीशन ने जिसे 'अनमना और क़ानून की खाल निकालने वाला रवैया' कहा था, वह इस तरह के संगठनों के लिए बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन यह क्रूर व्यंग्य हुआ कि नागरवाला खुद इसी तरह की एक विभागीय अड़चन से ठोकर खाकर लड़खड़ा गये थे। वास्तव में, यह कहना बिलकुल ठीक होगा कि अगर उनके जारी किये हुए आदेश का सम्बन्धित विभागीय 'खंड' ने थोड़ी मुस्तैदी के साथ पालन किया होता तो गांधीजी की हत्या को रोका जा सकता था।

24 जनवरी को नागरवाला ने पूना की पुलिस को बडगे की गिरफ़्तारी का आदेश दिया था। बम्बई से पूना सौ मील से कुछ ही ज्यादा दूर है और संचार की व्यवस्था इतनी अच्छी है कि उसे बम्बई का उपनगर समझा जा सकता है। लेकिन 24 जनवरी को सनीचर था और ऐसा लगता है कि सोमवार से पहले पूना में किसी ने उस आदेश को पढ़ा भी नहीं था। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, बडगे बाईस तारीख की रात को पूना पहुँच चुका था और अपने पुराने पते पर ही रह रहा था। उसे 31 जनवरी की सुबह गिरफ़्तार किया गया, नागरवाला द्वारा गिरफ़्तारी का आदेश जारी किये जाने के सात दिन और गांधीजी को गोली मारे जाने के बारह घंटे बाद।

बडगे की गिरफ़्तारी होते ही ऐसा लगा जैसे बहुत बड़ी लाटरी निकल आयी हो, ऐसी लाटरी, जिसका सपना सारी दुनिया के पुलिसवाले देखते रहते हैं; इस एक ही सुराग़ से अत्यन्त जटिल अपराध-योजना का पूरा नक़्शा सामने आ गया।

विचित्र बात तो यह है कि यह आदेश जारी करते समय नागरवाला को इस बात का गुमान तक नहीं था कि बडगे खुद भी इस साज़िश में शामिल था। सच तो यह है कि उस वक़्त तक उन्हें मदनलाल के अलावा सिर्फ़ करकरे का नाम मालूम था। दिल्ली के दो पुलिस-अफ़सरों ने उन्हें जो कुछ बतलाया था, उससे वह इतना ही समझ पाये थे कि उस साज़िश से सम्बन्धित लोग या तो बम्बई के थे या पूना के, और यह कि वे हथगोलों और विस्फोटकों से लैस थे।

इस जानकारी के आधार पर नागरवाला ने पुलिस के काग़ज़ात में उन लोगों के नाम देखे, जो ग़ैर-क़ानूनी हथियार और विस्फोटक बेचते थे और लगभग आधे दर्जन दूसरे लोगों के नामों के बीच उन्हें दिगम्बर बडगे का नाम दिखायी दे गया। उन्होंने सोचा था कि बडगे को क़ाबू में करके उससे यह मालूम करने की कोशिश करेंगे कि मदनलाल और उनके साथियों को ये विस्फोटक और हथगोले कैसे मिले! जैसा कि नागरवाला ने कपूर-कमीशन को बतलाया, उन्होंने बडगे को सिर्फ़ इसलिए गिरफ़्तार कराया था कि 'वह ग़ैर-क़ानूनी हथियार बेचता था, इसलिए शायद वह बता सके कि बारूद कहाँ से आयी थी।'

बडगे को गिरफ़्तार करने के लिए पूना की पुलिस को बहुत ज्यादा कार-गुज़ारी भी नहीं दिखानी पड़ती। वह पुराना मुजरिम था और पुलिस उसे किसी वक़्त भी पूछताछ के लिए तलव कर सकती थी।

लेकिन उसकी गिरफ़्तारी का अनुरोध बम्बई शहर की पुलिस ने किया था, और पूना ज़िले की पुलिस ने, जो प्रान्तीय संगठन के आधीन थी, इस आदेश का पालन करने में काफ़ी समय लगा दिया। बाद में उन्होंने वहाना यह वनाया कि वडगे हफ़्ते-भर तक 'जंगल में छिपा हुआ था' और अनंतर जो छानवीन हुई उसमें नागरवाला ने भी पूरी तरह उनकी इस वात का समर्थन किया। वडगे का अपना वयान है कि वह कहीं नहीं छिपा था, वापस आने के बाद से वह अपने घर से शायद कभी निकला ही नहीं था और रात को तो कभी नहीं निकला था।

31 जनवरी को सवेरे साढ़े पाँच वजे दरवाज़े पर दस्तक सुनकर बडगे की आँख खुल गयी। पूना ज़िला पुलिस के इंस्पेक्टर ओक उसे गिरफ़्तार करके थाने ले जाने आये थे। वडगे चुपचाप उनके साथ चला गया।

थाने में इंस्पेक्टर ने उसे समझाना शुरू किया कि एक आदमी ने, जिसका नाम मदनलाल था, दिल्ली में गांधीजी की प्रार्थना-सभा के पास वारूद का विस्फोट किया था, उसे मौक़े पर ही गिरफ़्तार कर लिया गया और उसकी जेव से विस्फोट के लिए विलकुल तैयार हालत में एक हथगोला भी वरामद हुआ। इसके वाद उन्होंने वडगे से पूछा कि मदनलाल को वह वारूद और हथगोला कैसे मिला होगा !

वडगे को मालूम था। वे दोनों ही चीज़ें उसी ने दी थीं।

वडगे पुलिस के तौर-तरीक़ों को अच्छी तरह जानता था। वह नहीं चाहता था कि पुलिस उससे सारी वातों का पता लगाने के लिए वही तरीक़े अपनाये जो आमतौर पर अपनाये जाते हैं। उसने सब-कुछ सच-सच बता दिया।

उसने ब्यौरे की वहुत-सी वातें और दर्जनों लोगों के नाम वताये—करकरे का मदनलाल को उसकी दूकान पर लाना; आप्टे और नाथूराम का उससे हथ-गोले, विस्फोटक और रिवाल्वर दिलाने के लिए कहना; माल देने के लिए उसका बम्बई जाना और हिन्दू महासभा के दफ़्तर में सवका मिलना। अभिनेत्री शान्ता मोडक के साथ, जो फ़िल्मों में विम्बा के नाम से काम करती थी, संयोग से अपनी मुलाक़ात हो जाने के वारे में आप्टे द्वारा वताया हाल; वम्वई में करकरे के दोस्त जी० एम० जोशी का नाम और पता; भूलेश्वर के मन्दिर में दोनों पुरोहित-भाइयों से कई वार उनकी मुलाक़ात; ज़्यादा कारगर रिवाल्वर हासिल करने की उनकी कोशिश, टैक्सी से लम्बी दौड़-धूप, मनोरमा साल्वी के साथ आप्टे का प्रेम; और वम्बई में जिन लोगों ने नाथूराम और आप्टे को पैसे दिये थे, उनके नाम और पते।

और फिर दिल्ली में क्या-क्या हुआ : गोपाल गोडसे से मुलाक़ात, जो अपने साथ अपना रिवाल्वर लाया था; बिड़ला हाउस के अहाते का मुआइना; बिड़ला मन्दिर के पीछे वाले जंगल में निशानेवाज़ी का अभ्यास; मैरीना होटल के कमरे में सबको अन्तिम आदेश; बिड़ला हाउस की घटनाओं के वारे में उसे जो कुछ मालूम था, उसका पूरा ब्यौरा; और वचे हुए विस्फोटकों को दिल्ली में हिन्दू महासभा भवन के अहाते में गाड़ दिया जाना।

नागरवाला ने बडगे को बम्बई भेज देने के लिए कहा, ताकि वहाँ मदनलाल

से उसका 'सामना' कराया जा सके, जिसे हवाई जहाज़ से वहाँ भेजा जा रहा था। लगता है कि सामना कराने पर भी मदनलाल ने, जो कुछ वह पहले ही बतला चुका था उससे ज़्यादा कुछ नहीं कहा। लेकिन तब तक नागरवाला ख़ुद बडगे से बहुत लम्बी बातचीत कर चुके थे और उन्होंने अन्दाज़ा लगा लिया होगा कि उसे 'इक़बाली गवाह' बनाया जा सकता है, जिसे साज़िश के बारे में इतनी काफ़ी बातें मालूम थीं कि उसकी मदद से साज़िश में शामिल बाक़ी लोगों को गिरफ़्तार करना और अदालत में उनके ख़िलाफ़ जुर्म साबित करना भी बहुत आसान हो जाता।

बडगे को इसका कुछ भी पता नहीं था कि 20 जनवरी की शाम के बाद बाक़ी लोग क्या करते रहे थे, इसलिए वह यह नहीं बतला सका कि उन लोगों को वह बरेटा पिस्तौल किसने दिया होगा। लेकिन उसने उन सब लोगों के नाम बता दिये, जो 20 तारीख़ को तीसरे पहर मैरीना होटल के कमरे में जमा हुए थे: नाथूराम, आप्टे, करकरे, मदनलाल, गोपाल, शंकर और वह ख़ुद।

नागरवाला 5 फ़रवरी को मोटर से ख़ुद पूना यह पता लगाने गये कि आप्टे और गोपाल गोडसे और शंकर किस्टैया वहाँ हैं कि नहीं; शंकर के बारे में बडगे ने बतलाया था कि वह छुट्टी लेकर अपनी माँ से मिलने गया था और उसी दिन लौटकर आने वाला था। लेकिन आप्टे के पड़ोसियों ने नागरवाला के आदमियों को बतलाया कि वह दो हफ़्ते से भी ज़्यादा पूना में दिखायी नहीं दिया था और शंकर के बारे में भी पता चला कि वह अभी तक लौटा नहीं है। लेकिन गोपाल घर पर ही था। उसे गिरफ़्तार करके बम्बई ले जाया गया।

शंकर, जो अपनी माँ से मिलने कुछ दिन के लिए शोलापुर गया था, गिरफ़्तार करने के लिए आयी हुई पुलिस की टोली के वापस चले जाने के कुछ ही घंटे बाद पूना वापस पहुँचा। जब उसे बतलाया गया कि उसके मालिक बडगे को गिरफ़्तार करके पुलिस बम्बई ले गयी है तो उसने उसका पता लगाने के लिए बम्बई जाने का फ़ैसला किया। बाद में, जैसा कि उसने मुक़दमे की सुनवाई करने वाले जज को बतलाया: 'बम्बई पहुँचकर मेरी समझ में नहीं आया कि मैं कहाँ जाऊँ। मुझे दीक्षितजी महाराज का खयाल आया और मैं उनके घर गया। वहाँ मुझे उनका एक नौकर मिला, जिसने मुझे सी० आई० डी० के दफ़्तर पहुँचा दिया। वहाँ मैं नागरवाला साहब से मिला। किसी ने नागरवाला साहब से कुछ कहा, जिस पर उन्होंने मुझे एक तमाचा जड़ दिया।'

'सताये जाने की अनिवार्य कार्रवाई' के तहत गोपाल ने बहुत-सी बातें बतला दीं। यह भी बतला दिया कि उसने अपना रिवाल्वर हिफ़ाज़त से एक दोस्त के पास रखा दिया है। 8 फ़रवरी को बम्बई की पुलिस गोपाल के दोस्त पांडुरंग गोडबोले से 'सामना' कराने के लिए उसे पूना ले गयी। मोटर गोडबोले के घर से थोड़ी दूर पहले ही रोक दी गयी और सादे लिबास में दो पुलिसवाले उसके साथ दरवाज़े तक गये।

जब गोडबोले को यह पता चला कि गांधीजी की हत्या गोपाल के भाई नाथूराम ने की थी तो यह सोचकर वह बेहद घबरा गया कि गोपाल का रिवाल्वर उसने अपने यहाँ रख छोड़ा है। उसने अपने एक दोस्त गोपाल काले को अपने डर की वजह बतलायी और काले ने कहा कि वह रिवाल्वर को कहीं ठिकाने लगा देगा।

इसलिए जब गोपाल गोडसे, सादे लिवास में उन दो पुलिसवालों के साथ, अपना रिवाल्वर वापस माँगने गया तो गोडबोले ने पहले तो यह कहा कि उसने रिवाल्वर फेंक दिया है, लेकिन फिर उसने बतला दिया कि वह काले को दे दिया है। यह सुनकर पुलिस गोडबोले को मोटर में बैठाकर काले के घर ले गयी। और काले ने सचमुच अपने वादे के मुताबिक़ वह रिवाल्वर 'फ़र्ग्यूसन कॉलेज के बड़े फाटक के सामने सड़क के दाहिनी तरफ़' फेंक दिया था।

गोपाल का रिवाल्वर कभी मिला नहीं। गोडबोले और काले दोनों को गिरफ़्तार करके पूछताछ के लिए ले जाया गया और छः हफ़्ते तक हिरासत में रखा गया।

बडगे ने जिन सात आदमियों के नाम बतलाये, उनमें से पाँच पुलिस के हाथ लग चुके थे; इनके अलावा सावरकर भी थे जिनका नाम, मुमकिन है, बडगे ने न लिया हो। अब सिर्फ़ आप्टे और करकरे बच गये थे।

नागरवाला को करकरे की वजह से खासतौर पर परेशानी थी। वह बहुत तेज़ आदमी था और उसका कोई भरोसा नहीं कि कब कहाँ चला जाये। उसने बहुत दुनिया देखी थी और अपनी सारी ज़रूरतें खुद पूरी करना जानता था। वह बहुत साधारण ज़िन्दगी बिताने का आदी था और किसी भी पृष्ठभूमि में घुल-मिल जाना उसके लिए बहुत आसान था। वह लगभग एक महीने से छिपा हुआ था। सवाल यह था कि इससे पहले कि करकरे गोआ भाग जाये, उसे कैसे पकड़ा जाये! उन दिनों गोआ पर पुर्तगालियों का क़ब्ज़ा था और भारत से भागे हुए अपराधियों के छिपने के लिए वह बहुत अच्छी जगह थी।

आप्टे के बारे में नागरवाला का जासूस-मन कहता था कि वह कभी-न-कभी बम्बई आयेगा ज़रूर। बडगे ने उसका जो चित्र खींचा था, अगर वह सही था तो यह लाज़िमी था कि वह मनोरमा साल्वी से सम्पर्क स्थापित करेगा। अगर उसने ऐसा किया तो वह अपने आप सी० आई० डी० के दफ़्तर में पहुंच जायेगा, क्योंकि मनोरमा के बाप पुलिस विभाग के फ़्लैट में रहते थे, और वहाँ लगे टेलीफ़ोन का नम्बर पुलिस के टेलीफ़ोन एक्सचेंज से माँगना पड़ता था। नागरवाला ने उनके फ़्लैट पर लगातार निगरानी रखने और उस टेलीफ़ोन पर जो भी बातचीत हो, उसे सुनने का आदेश जारी कर दिया।

उन्हें मालूम हुआ कि दोनों आदमी साथ थे और बम्बई में ही थे, या कम-से-कम पिछले दिन तीसरे पहर तक तो बम्बई में थे ही। नागरवाला के पूना से लौटने के कुछ ही मिनट बाद सी० आई० डी० के दो आदमी मुंह लटकाये हुए एलफ़िंस्टन एनेक्सी का रजिस्टर उनको दिखाने लाये। उन्होंने नागरवाला को यह भी बतलाया कि जो आदमी नाथूराम का साथी बतलाया जाता है, जिसने अपना नाम 'डी० नारायण राव' लिखाया था, वह और एक दूसरा आदमी, जो करकरे हो सकता था, 3 फ़रवरी से एलफ़िंस्टन एनेक्सी में ठहरे हुए थे। जब पुलिसवाले उन्हें गिरफ़्तार करने वहाँ पहुँचे तो उससे कुछ ही मिनट पहले वे होटल छोड़कर चले गये थे।

नागरवाला ने उन्हें बहुत गालियाँ दीं। अब बैठकर इसका इन्तज़ार करने के अलावा और कोई चारा ही नहीं था कि टेलीफ़ोन पर कोई मतलब की बात सुनी जा सके। सारा दारोमदार इस पर था कि आप्टे अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए कितना बेचैन था! लेकिन फिर भी सवाल यह था कि करकरे उसके साथ होगा या नहीं?

बारहवाँ अध्याय

मैं नहीं चाहता कि मेरे साथ रहम किया जाये।

—नाथूराम गोडसे

गांधीजी की हत्या की खबर बिजली के झटके की लहर की तरह अपने-आप ही चारों ओर फैल गयी, और ऑल-इंडिया रेडियो के खास बुलेटिन में उसका एलान होने से पहले ही बिड़ला हाउस पर भीड़ जमा हो गयी।

अँधेरा हो चला था। सुर्मई शाल ओढ़े हुए दो आदमियों को, पीछे नौकरों वाले फाटक से चुपके से खिसकते हुए, किसी ने नहीं देखा। कुछ दूर चलकर उन्हें ताँगा मिल गया। उस पर बैठकर वे पुरानी दिल्ली स्टेशन पहुँच गये।

उस रात वे शरणार्थियों के बीच प्लेटफ़ार्म पर सोये।

अगली सुबह उन्होंने देखा कि सारा दिल्ली शहर मानो खाली हो गया है। बीस लाख की आबादी में कम-से-कम दस लाख गांधीजी की शव-यात्रा देखने सड़क के दोनों किनारों पर खड़े हो गये थे। एलन कैंपबेल-जॉन्सन ने लिखा है: 'इतनी बड़ी भीड़ थी कि उसे न पुलिस क़ाबू में रख सकती थी, न फ़ौज।' आप्टे और करकरे भी चाहे-अनचाहे उस मानव-समुद्र का हिस्सा बन गये और शव-यात्रा देखने चले गये।

दरअसल, उन्होंने सोचा था कि दिल्ली के दो-एक प्रभावशाली नेताओं से मिलेंगे, जो उनके विचारों का समर्थन करते थे, और उनके सामने गांधीजी की हत्या की ज़िम्मेदारी स्वीकार करके उनसे पैसा और मदद माँगेंगे और जाकर कहीं विदेश में बस जायेंगे। दिल्ली में इस तरह के कुछ लोग अगर रहे भी हों, तो भी उस दिन उनसे मिलना नामुमकिन था। सभी दरवाज़े बन्द थे। आप्टे और करकरे अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक यही कहते रहे कि उन्हें अपने किये पर तनिक भी पछतावा नहीं हुआ, लेकिन यह नामुमकिन है कि उस दिन उनके कार्य की अतिदुष्टता उनके मन पर छा न गयी हो और उन्हें यह आभास न हुआ हो कि गांधीजी कितने महान थे, और वे कितने तुच्छ हैं।

वे दोपहर के बाद दबे पाँव स्टेशन लौटे। उस समय उन्हें स्टेशन की विशाल इमारत भी बिलकुल खाली दिखायी दी। वे जानते थे कि बम्बई की ट्रेनों पर कड़ी नज़र रखी जा रही होगी, इसलिए उन्होंने इलाहाबाद का टिकट लिया और

साढ़े तीन बजे वाली गाड़ी से चल दिये। उनकी ज़िन्दगी-भर की आदतों ने उस समय भी उनका साथ नहीं छोड़ा। रास्ते में एक साथ रहकर दोनों ही कुछ राहत पा सकते थे, लेकिन आप्टे ने दूसरे दर्जे का टिकट लिया और करकरे ने तीसरे का।

उनकी ट्रेन रवाना होने से पहले ही हिन्दू महासभा के सेक्रेटरी को एक तार मिल चुका था जिसमें लिखा था: 'दिल्ली पहुँच रहा हूँ। पैरवी का इन्तज़ाम कीजिये—एन० डी० आप्टे।'

मनोरमा को जैसे ही पता लगा था कि 'नाथूराम को कुछ हो गया है' उसने फ़ौरन हिदायत के अनुसार तार भेज दिया। लेकिन शायद तब तक आप्टे महसूस करने लगा था कि उसके दिल्ली में मौजूद न होने के सबूत के तौर पर वह तार काम नहीं आ सकेगा।

वे लोग 2 फ़रवरी को बम्बई पहुँचे और सीधे सी ग्रीन (नार्थ) होटल में गये। कोई कमरा खाली नहीं था; वहाँ के मैनेजर सत्यवान रेले ने उनसे कहा कि हद-से-हद उन्हें अलग-अलग कमरों में एक-एक पलंग दिया जा सकता है, जिसके लिए उन्हें पैसा पहले देना होगा। उन्होंने उस वक़्त तो इसी पर सन्तोष कर लिया, लेकिन अगले ही दिन सुबह एलफ़िंस्टन एनेक्सी होटल में चले गये जहाँ उन्हें अलग एक कमरा मिल गया। उसी दिन वे ठाणे में करकरे के दोस्त जी० एम० जोशी से मिले। जोशी ने बाद में पुलिस को बतलाया कि जब उसने उनसे पूछा कि वे इतने दिन कहाँ रहे तो आप्टे ने जवाब दिया: 'तुम्हें बतलाने से हमें कोई फ़ायदा नहीं होगा और तुम्हारे लिए यह जानना बहुत खतरनाक होगा।'

ऐसा लगता है कि जोशी यह जवाब पाकर सन्तुष्ट हो गया और उसने आगे कुछ नहीं पूछा। कम-से-कम पुलिस को उसने यही बतलाया।

एलफ़िंस्टन एनेक्सी होटल से भागकर उन्होंने फ़ौरन एक टैक्सी पकड़ी और सीधे सैंडहर्स्ट रोड पर आर्य पथिकाश्रम में गये। आप्टे ने पूरे भरोसे के साथ करकरे से कहा था कि वहाँ आसानी से कमरा मिल जायेगा; क्योंकि वहाँ के मैनेजर जी० पी० दुबे को वह जानता है। करकरे को सामान के साथ टैक्सी में छोड़कर वह दुबे से मिलने गया। लेकिन इस बार दुबे के पास आप्टे के लिए कोई खाली कमरा नहीं था; और उसके साथ वह बड़ी रुखाई से पेश आया। आप्टे को धोती पहने देखकर दुबे ने उसकी मज़ाक उड़ाते हुए पूछा था: 'अँग्रेज़ी कपड़े छोड़कर हिन्दुस्तानी कपड़े क्यों पहन लिये?' आप्टे ने भीगी बिल्ली की तरह जवाब दिया था: 'कभी-कभी ऐसा हो जाता है।' बाद में दुबे ने बतलाया कि वह आप्टे को आसानी से कमरा दे सकता था, लेकिन यह देखकर कि 'उसके कपड़े मैले, दाढ़ी बढ़ी हुई, और बाल बिखरे हुए थे, जैसे कई दिन से न नहाया हो और न कपड़े बदले हों,' दुबे का माथा ठनका।

जब आप्टे मुँह लटकाये टैक्सी के पास वापस आया तो उस समय करकरे को पहली बार आभास हुआ कि उनकी हालत चारों ओर से घिरे हुए जानवरों जैसी है, और उन्हें अब कोई नहीं बचा सकता था।

विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर उतरकर उन्होंने आगे की ट्रेन पकड़ी और सामान लिये हुए नवपाड़ा में एक बार फिर जोशी के घर पर पहुँच गये।

इस बात पर यक़ीन करना मुश्किल है कि जोशी को अभी तक पता नहीं था कि उसके दोनों मेहमानों का गांधीजी की हत्या से गहरा सम्बन्ध है और वे पुलिस से छिप रहे थे। फिर भी उसने उनका पूरी तरह साथ दिया। उन्हें किसी

ऐसी जगह की बेहद तलाश थी, जहाँ बैठकर वे इत्मीनान से सोच सकें कि अब उन्हें आगे क्या करना है। आप्टे और करकरे के साथ जोशी के सम्बन्ध ऐसे थे कि वह उन्हें अपने घर से निकाल नहीं सकता था। दरअसल, यह मुमकिन है कि वही उनकी तरफ़ से कुछ दोस्तों के पास गया हो और वही एम० जी० घईसास नामक आदमी को उनसे मिलाने लाया हो।

घईसास सात तारीख को सुबह आया; उसने आप्टे और करकरे से बड़ी देर तक बातें कीं और फिर वह यह मालूम करने पूना चला गया कि वहाँ की स्थिति कैसी है और उन लोगों के परिवार वालों का हाल क्या है। वह नौ तारीख को सवेरे लौटा तो उससे बात करके आप्टे और करकरे को विश्वास हो गया कि उनके पूना जाने में कोई खास खतरा नहीं है। तीसरे पहर वे पूना की ट्रेन पकड़ कर चले गये।

अब वे अपने पाले में थे। पूना बहुत बड़ा चहल-पहल वाला शहर था, जिसे हमेशा से हिन्दू संगठन आन्दोलन का गढ़ समझा जाता था और जहाँ उनके दर्जनों गहरे दोस्त थे। जाकर भीड़ में खो जाने के लिए इससे अच्छी दूसरी जगह हो ही नहीं सकती थी। उनके दोस्तों ने उन्हें अपने घरों में छिपाया, उनसे हमदर्दी की, उन्हें खाना खिलाया और आप्टे के घर से उसके कपड़े तक लाकर उसे दिये।

अगर करकरे की बात पर विश्वास किया जाये तो इस परिचित वातावरण में वापस पहुँचकर उनकी आत्मा उन्हें कचोटने लगी। नाथूराम, मदनलाल, गोपाल, बडगे और यहाँ तक कि शंकर भी, जो सिर्फ़ उन लोगों के साथ-साथ चलता था, गिरफ़्तार हो चुके थे। सावरकर और दर्जनों दूसरे ऐसे लोग भी गिरफ़्तार किये जा चुके थे, जिनका इस अपराध से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। उन्हें यह उचित नहीं लगा कि वे खुद तो आज़ाद घूमते रहें और अपने दोस्तों को, जो उनकी मदद कर रहे थे, खतरे में डालते रहें। भागने की कोशिश करना तो ज़रा भी उचित नहीं मालूम हुआ।

करकरे ने इस लेखक को बतलाया कि वे बड़ी आसानी से सीमा पार करके हैदराबाद रियासत में पहुंच सकते थे, जो वहाँ से मुश्किल से सौ मील दूर थी और उन दिनों बिलकुल 'विदेश' जैसी थी। और फिर वहाँ करकरे के दर्जनों दोस्त थे, जो हिन्दू पुनरुत्थान आन्दोलन के बारे में उसी के ढंग से सोचते थे और जिन्हें उसने क़ासिम रिज़वी के लुटेरे गिरोहों के खिलाफ़ संघर्ष में पैसे और हथियारों से बहुत मदद दी थी।

'इसके अलावा, हम भागकर गोआ भी जा सकते थे,' करकरे ने कहा, 'हम इस तरह की बातें तो अकसर करते थे, लेकिन हम जानते थे कि हम ऐसा कुछ करेंगे नहीं।'

अपनी पुस्तक गांधी-हत्या आणि मी (गांधी की हत्या और मैं) में गोपाल गोडसे ने भी भाग जाने के बारे में इसी तरह के संकोच का ज़िक्र किया है। गांधीजी की हत्या के एक-दो दिन बाद जब गोपाल कुछ पत्र जला रहा था तो उसे दरवाज़े पर कुंडी खटखटाये जाने की आवाज़ सुनायी दी। एक पंजाबी दोस्त, जिसका नाम उसने रामनाथ लिखा है, बाहर खड़ा था।

'तो वह तुम्हारा भाई था!' रामनाथ ने कहा।

'हाँ।'

'सुनो, मेरी राय में तो तुम यहाँ से भाग जाओ। मैं तुम्हें दिल्ली में अपने

एक दोस्त के नाम खत दिये देता हूँ। वह तुम्हारी देखभाल करेगा। तुम वहाँ जाकर शरणार्थियों के बीच रहने लगो। पंजाबी तो तुम अच्छी तरह बोल ही लेते हो, अगर थोड़ी-सी सावधानी वरतोगे तो कोई तुम्हें पहचान नहीं सकेगा।'

यह कहकर रामनाथ ने यह सोचकर कि शायद गोपाल के पास दिल्ली जाने-भर को पैसे न हों, उसे 150 रु० भी देने को कहा था।

लेकिन गोपाल ने सुझाव मानने से इंकार कर दिया—इसलिए नहीं कि भाग जाना मुमकिन नहीं था, बल्कि इसलिए कि वह भागना नहीं चाहता था।

आप्टे और करकरे की हालत अब एक जैसी थी। शायद वे समझदारी की बात सोच ही नहीं सकते थे या शायद शेखी में आकर उन्होंने बम्बई वापस जाने का फ़ैसला किया।

11 फ़रवरी की सुबह वे फिर जोशी के घर पहुँच गये। वे अच्छी तरह समझ रहे थे कि आँख-मिचौली का यह खेल अब खत्म होने ही वाला है।

वे सोच रहे थे कि किसी भी समय, किसी भी क्षण नीचे सड़क पर पुलिस की मोटर की तेज़ सीटी बजेगी और सड़क पर चलते हुए कुछ लोग अचानक उस घर को घेर लेंगे। इस उधेड़बुन में उनकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। दो दिन तक वे इस हालत को बर्दाश्त करते रहे; फिर अचानक उन्होंने बम्बई जाकर किसी होटल में रहने का फ़ैसला किया, मानो किसी जादू के ज़ोर से वे खुद आगे बढ़कर मुसीबत को गले लगा लेना चाहते थे। उस दिन 13 तारीख थी, और शुक्रवार का दिन।

आप्टे बेझिझक रीगल सिनेमा के पीछे अपोलो होटल में घुसा। यह होटल भी उन कई होटलों में से था, जहाँ वह और मनोरमा साल्वी पहले भी 'श्री तथा श्रीमती एन० डी० आप्टे' के नाम से ठहर चुके थे। रिसेप्शन-क्लर्क कैंडिडो पिंटो ने उन्हें दूसरी मंज़िल पर 29 नम्बर का कमरा दे दिया। आप्टे ने कमरा ले लिया और बाहर जाकर अपना सामान ले आया। करकरे भी उसके साथ था। उसने रजिस्टर में अपना नाम 'एन० काशीनाथ' और करकरे का नाम 'आर० विष्णु' लिख दिया। बस यही उनका आत्म-समर्पण था। दिन-भर और रात को भी वे इंतज़ार करते रहे कि कब बाहर किसी के दबे पाँव आने की आहट सुनायी दे, कब दरवाज़े पर कोई ज़ोर से दस्तक दे।

लेकिन कोई भी नहीं आया। सुबह थोड़ी देर के लिए उनकी आँख लग गयी। अपोलो होटल में टेलीफ़ोन करने के लिए नीचे रिसेप्शन-काउंटर तक जाना पड़ता है। चौदह तारीख को सुबह दस बजे के कुछ ही बाद आप्टे और करकरे सीढ़ियों से उतरकर नीचे आये और आप्टे ने किसी को टेलीफ़ोन किया। इसके बाद वे दोनों बाहर चले गये।

ग्यारह बजे इंस्पेक्टर बी० ए० हल्दीपुर के साथ पुलिस की एक टोली 29 नम्बर के कमरे में रहने वालों को ढूँढ़ती हुई आयी। पिंटो ने हल्दीपुर को बतलाया कि 'मिस्टर काशीनाथ' और 'मिस्टर विष्णु' दोनों बाहर गये हुए हैं।

इंस्पेक्टर हल्दीपुर बैठकर इंतज़ार करने लगे। उन्हें बहुत देर इंतज़ार करना पड़ा। आप्टे ने मनोरमा से शाम को छः बजे होटल में मिलने को कहा था और वह खुद साढ़े पाँच बजे लौटकर आया। हल्दीपुर ने होटल के सामने एक टक्सी आकर रुकते देखी और पिंटो की तरफ़ सवालिया नज़रों से देखा। पिंटो ने सिर हिलाकर हामी भरी!

हल्दीपुर ने आप्टे को फ़ौरन गिरफ़्तार करके पुलिसवालों के साथ सी०

आई० डी० के दफ़्तर भिजवा दिया और खुद वहीं बैठकर करकरे के आने का इंतज़ार करने लगे। करकरे जोशी से मिलने ठाणे गया था। वहाँ से वह आठ बजकर पच्चीस मिनट पर लौटकर आया।

पुरानी दिल्ली स्टेशन के रिटायरिंग-रूम के रजिस्टर में दर्ज था कि नाथूराम के पास ग्वालियर से दिल्ली तक के दो टिकट थे; इस जानकारी के सहारे पुलिस ने बहुत 'नरमी के साथ' पूछताछ करके भी उससे यह बात उगलवा ली थी कि वह पिस्तौल ग्वालियर के डॉ० परचुरे ने दी थी। इस इत्तिला से लैस होकर बम्बई की सी० आई० डी० के डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट एन० वाई० देउलकर 14 फ़रवरी को डॉ० परचुरे को गिरफ़्तार करने ग्वालियर पहुँचे।

वहाँ पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि परचुरे पहले ही गिरफ़्तार किये जा चुके थे और ग्वालियर के पुराने क़िले की उसी अँधेरी कोठरी में बन्द थे, जिसमें मुग़ल सम्राट बेहद खतरनाक क़ैदियों को बन्द करवा देते थे।

परचुरे के खिलाफ़ आरोप यह लगाया गया था कि गांधीजी की हत्या की खबर सुनकर उन्होंने 'मिठाई बाँटी थी'। अगर परचुरे सचमुच इतने नासमझ थे कि गांधीजी के मरने की खुशी मनाते, तो वह इस तरह के अकेले आदमी नहीं थे। हर जगह सिरफिरे होते हैं और गांधी के भी कुछ निन्दक थे। कई शहरों में और खास तौर पर शरणार्थी कैंपों में, इसी तरह गांधीजी के मरने की खुशियाँ मनायी गयी थीं। परचुरे ने बाद में इस बात से इंकार किया कि उन्होंने गांधीजी के मरने पर मिठाई बाँटी थी, लेकिन यह माना कि उन्होंने बहुत-सी ऐसी बातें कही थीं, जिन पर वहाँ के नये काँग्रेसी मन्त्रिमंडल का गुस्सा भड़क उठा था।

ग्वालियर में काँग्रेस और हिन्दू महासभा एक-दूसरे की टक्कर की पार्टियाँ थीं और परचुरे को पूरा विश्वास था कि दिल्ली की सरकार ने महाराजा पर दबाव डालकर उन्हें इनकी पार्टी की बजाय काँग्रेस के हाथों में सत्ता सौंपने पर मजबूर कर दिया था। ग्वालियर के काँग्रेस वालों को भी परचुरे से बेहद नफ़रत थी। इसलिए गांधीजी की हत्या के बाद जब ग्वालियर में साम्प्रदायिक दंगे हुए तो उन्होंने मौक़े का फ़ायदा उठाकर परचुरे और उनके साथियों को सार्वजनिक व्यवस्था क़ायम रखने के क़ानून में पकड़वाकर बन्द करा दिया। एक सप्ताह पहले परचुरे को पूरा भरोसा था कि वह ग्वालियर की पहली लोकतांत्रिक सरकार के प्रधान बनेंगे, और अब वह जेल में बन्द थे।

ग्वालियर उस समय न तो पूरी तरह देसी रियासत ही थी और न भारत का हिस्सा। उसकी स्थिति कुछ इन दोनों के बीच की थी। महाराजा की सत्ता काँग्रेस मन्त्रिमंडल के हाथों में सौंप दी गयी थी, लेकिन भारत में ग्वालियर रियासत के विलय की क़ानूनी कार्रवाई अभी पूरी नहीं हुई थी। इसलिए अगर कोई अपराधी भागकर ग्वालियर की सीमा में चला जाये तो उसे वापस ले जाने के लिए भारत की पुलिस को ग्वालियर के अधिकारियों से इजाज़त लेनी पड़ती थी।

लेकिन लगता है, ज़ाब्ते की इस बारीकी के बारे में न बम्बई की पुलिस ने सोचा, न ग्वालियर की पुलिस ने। देउलकर ने आकर परचुरे से पूछताछ की और दो दिन के अन्दर ही वह सारी बातें स्वीकार कर लेने पर राज़ी हो गये। इसी बीच देउलकर के बड़े अफ़सर-डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल यू० जी० राणा भी ग्वालियर पहुँच गये। उन दोनों ने माँग की कि परचुरे को, जिन पर गांधीजी की हत्या की साज़िश में शामिल होने का अभियोग लगाया जाने वाला था, भारत की पुलिस